स्वामी दयानन्दजी

का

सच्चा काशी शास्त्रार्थ

अर्थात्—

आर्यसमाजके जन्मदाता स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीका काशीके सनातनधर्मी विद्वानोंके साथ सन् १८६९ ई० में हुए शास्त्रार्थमें पराजय।

लेखक—
साहित्योपाध्याय, विद्यावारिधि, महामहोपाध्याय
पण्डित मथुराप्रसाद दीक्षित

प्रकाशित १९१६ ई०] [मूल्य २० पैसे

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

10/10/81		

...विद्वानोंका

और दयानन्दजीका

सच्चा काशी शास्त्रार्थ

जिसको

साहित्योपाध्याय विद्यावारिधि भगवन्त नगर जि० हर्दोई
निवासी पण्डितवर **मथुराप्रसाद दीक्षितजीने**
रचना कर प्रकाशित किया।

त्री० एल० पावगी द्वारा
हेतचिन्तक प्रेस, रामघाट, बनारस सिटी
ं मुद्रित हुआ।

प्रथम बार | सन् १९१६ | प्राचीनमूल्य ।)

द्वितीय संस्करणके सम्पादक

स्वामी केशवपुरी,
वेदान्ताचार्य, शोध स्नातक
(१) संयुक्त मन्त्री, भारत साधु समाज,
वाराणसी शाखा।
(२) सहायक मन्त्री,
संन्यासी संस्कृत महाविद्यालय,
(३) सहसम्पादक गिरिधर साहित्यिक-
शोध संस्थान, जयपुर, काशी।

पता—
(१) संन्यासी संस्कृत महाविद्यालय,
(अपारनाथ मठ)
ढुण्ढिराज गणेश, वाराणसी।
(२) विहारीपुरी मठ,
साक्षिविनायक, वाराणसी।

द्वितीय संस्करणके प्रकाशक

ब्रह्मचारी भवानन्द
गीताधर्म प्रकाशन,
मिश्रपोखरा, वाराणसी।

संवत् २०२६ वि०
विजयादशमी

द्वितीय संस्करण
संख्या २०००

मुद्रक—
गीताधर्म प्रेस,
मिश्रपोखरा, वाराणसी।

मथुराप्रसाद दीक्षितका स्वर्गवास—१९६[illegible] ई०

मूल्य—३० पैसे

ॐ

॥ तमसो मा ज्योतिर्गमय ॥

५३ वर्ष पश्चात्

यह दूसरा संस्करण क्यों ?

समझमें नहीं आता कि हजारों बार पराजित और लज्जित होने पर भी आर्यसमाजी बन्धु सोते हुए सनातनी सिंहोंको क्यों छेड़ बैठते हैं। किसीने कहा है—"एकां लज्जां परित्यज्य त्रैलोक्य विजयी भवेत्" अर्थात् केवल एक लज्जाका त्याग करके तीनों लोकोंको जीत लेवै। कहीं आर्यसमाजी बन्धुओंने इसीको अपना सिद्धान्त तो नहीं बना लिया है! यदि ऐसा हो तो हम उनको सचेत कर देना चाहते हैं कि यह त्रैलोक्य विजयकी आशा तो मृगतृष्णा मात्र है। आजकल भारतवर्षमें एक नया रोग फैल गया है—शताब्दि मनानेका। आर्यसमाजियोंने भी दयानन्द शास्त्रार्थ शताब्दि मनानेकी घोषणा करके पाँचवें सवारोंमें अपना नाम लिखा ही दिया। 'दयानन्द शास्त्रार्थ शताब्दि' यह घोषणा ही बताती है कि नियत साफ नहीं है। हमको पता लग गया कि भाई लोग यह सिद्ध करने पर कमर कसे हुए हैं कि आर्यसमाजके जन्मदाता स्वामी श्री दयानन्दजी महाराजने काशीके विद्वानोंको शास्त्रार्थमें परास्त किया था। सच्चा शास्त्रार्थ पुस्तकके लेखकने भी ऐसा ही ५३ वर्ष पूर्व कहा था। सीधे सादे ढंगसे यदि आर्यसमाजका उत्सव या दयानन्दजी की जयन्ती मनाते तो कोई बात नहीं थी। हम स्वामी दयानन्दजी का आदर

करते हैं। भारतीयता, गौ, हिन्दुत्व आदिके वे परम भक्त थे इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता किन्तु उनको भगवान या उसके समकक्ष हम कदापि नहीं मान सकते क्योंकि भगवान्‌के एक खरववें भागकी भी योग्यता उनमें नहीं है, भगवान्‌की चतुर्थ भागकी शक्तिमें १४ भुवन हैं, शेष शक्ति सुरक्षित है।

एक रिटायर्ड सनातनी विद्वान् एवं नेतासे हमने इस पुस्तकके पुनर्मुद्रणकी चर्चा की तो बड़े अन्यमनस्क भावसे बोले, क्या !!! फायदा !!! गड़े मुरदे उखाड़नेसे !!! हमने कहा कि मुर्दा तो दूसरे लोग उखाड़ रहे हैं, हम तो पूर्व सावधानी बरत रहे हैं कि मुर्दा कहीं वायुमण्डलको दूषित न कर दे। किसी नीतिकारने कहा है कि "अनागतं यः कुरुते स शोभते" (खतरा उपस्थित होनेके पहिले ही बचावका उपाय करने वाला सुखी होता है)।

ये आर्यसमाजी हम सनातनियोंको ढोंगी और पाखण्डी कहते हैं क्योंकि हमलोग लोहा-लक्कड़, कंकड़-पत्थर को भगवान् मानकर पूजते हैं। सत्य तो यह है कि कुछ हद तक आर्यसमाजी भी हमारा अनुकरण करते हैं अर्थात् वे भी फोटो, छुरी, भद्रकाली आदि आदिकी पूजा करते हैं (स्वामी दयानन्दजी ने अपनी पुस्तकों में ऐसी आज्ञा दी है) किन्तु कहते नहीं हैं कि हम मूर्तिपूजक हैं, नहीं तो फिर तीस-मार-खाँ कैसे कहलायेंगे ? अच्छा जी ! मान लेते हैं कि हम सनातनी ढोंगी और पाखण्डी हैं। परन्तु हमारा यह ढोंग तथा पाखण्ड भी न जाने कितने कल्पोंसे चला आ रहा है। अच्छा, कल्पोंको भी जाने दीजिये। आधुनिक विज्ञानवादी लोग सृष्टिकी आयु लगभग दो अरब वर्ष मानते हैं। आर्यसमाजी भी ऐसा ही मानते हैं। हमारा ज्योतिष विज्ञान भी ऐसा ही कहता है। उसके अनुसार सृष्टिकी रचनाको एक अरब पंचानवे करोड़ अठावन लाख पचासी हज़ार बासठ वर्ष हुए हैं (सन् ६१ तक) और इतना

ही पुराना हमारा पाखण्ड भी है जबकि स्वामी दयानन्द जी के जन्मको एक सौ पैंतालीस वर्ष ही हुए हैं। अब जरा हमारे ढोंग और पाखण्डका चमत्कार देखिये—चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण सोमवती अमावास्या, मकर संक्रान्ति आदि आदि पर्वों पर बिना निमन्त्रणके, बिना प्रचारके, लाखों व्यक्ति अनेक कष्ट उठाकर भारतके सैकड़ों स्थानोंमें एकत्रित हो जाते हैं। एक बार स्वामी विद्यानन्द मण्डलेश्वर जी ने अफ्रीकाकी नाइल नदी पर कुम्भ पर्वका स्नान अपने शिष्यों और भक्तोंके साथ किया था। शिवरात्रि और कृष्ण जन्माष्टमी आदिके दिन मन्दिरोंमें आदमीके ऊपर आदमी टूट पड़ते हैं लेकिन दर्शन जरूर करते हैं। सनातन धर्म और उसकी शाखाओंके धर्मोंमें असंख्य सिद्ध महात्मा हो गये हैं लेकिन आर्यसमाजकी ओर तो अन्धकार ही दिखाई देता है। पाठक विचार करें कि जब हमारे झूठ, पाखण्ड और ढोंगमें इतनी शक्ति है तो हमारा सत्य कितना शक्तिशाली होगा! उसका भी हाल सुन लीजिये, हमारा सत्य है—"तत्त्वमसि" अर्थात् संसारकी रचना, उसका पालन तथा विनाश करनेवाले तुम हो (प्रत्येक मनुष्य)। याद रखिये! यह "तत्त्वमसि" तभी आपकी समझमें आ सकता है जबकि आप ऊपर बताये गये हमारे तथाकथित पाखण्डकी शरणमें आयेंगे अन्यथा कभी नहीं आ सकता यह हम डंकेकी चोट पर कहते हैं। इतने पर भी यदि आर्यसमाजी बन्धुगण कहें कि यह सब झूठ है, तब तो हमें यही कहना पड़ेगा कि खिसियानी बिल्ली खम्भा नोंचे।

अच्छा छोड़िये इस बकवादको। आइये १०० वर्ष पीछे चलें। विक्रमीय सम्वत् १६२६ की कार्तिक शुक्ला त्रयोदशीको काशीमें आर्यसमाजके प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज तथा काशीके पण्डितोंके बीच मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ हुआ था। दण्डी स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वतीजी महाराज भी उसमें सम्मिलित थे। काशी

नरेशने उसकी अध्यक्षता की थी। शास्त्रार्थ दुर्गाकुण्ड पर स्थित आनन्दबागमें हुआ था जिसमें स्वामी दयानन्दजी पराजित हुए थे। वह आनन्दबाग आज भी विद्यमान है और शास्त्रार्थका स्मारक भी उसमें बनाया गया है। स्मारक एक चौकोर वेदीके रूपमें १७×१७ फुट लगभग परिमाणका है। उस पर बैठनेके लिए चारों ओर सीमेंटकी बैठकें बेंचके आकारकी बनी हुई हैं। बागके पश्चिमोत्तर कोणमें यह स्मारक है जिस पर एक शिलालेख है जो इस प्रकार है—

॥ ओ३म ॥

शास्त्र द्वन्द्वांक चन्द्रेऽब्दे, वैक्रमे कार्तिके सिते।
भौमे भास्वत्तिथौ दिव्ये, मूर्तिपूजा विनिर्णये ॥ १ ॥
अमेठ्यानन्द बागेऽस्मिन्, काशिराज सभापतौ।
जनौघे विपुले वादः, प्रवृत्तश्श्रुतितत्परः ॥ २ ॥
विशुद्धानन्द सुप्रज्ञैर्बालशास्त्र्यादिभिर्बुधैः।
शास्त्रार्थमकरोत् साकं, दयानन्दो यतिर्महान् ॥ ३ ॥
भगवान्बख्श भूपालवचनात्तत्सुतः सुधीः।
अलेखच्छिलालेखं दानी राजा रणञ्जयः ॥ ४ ॥

आगे इस प्रकार लिखा है—

आर्यसमाजके प्रवर्तक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीसे काशीके प्रमुख विद्वान् श्री बालशास्त्री, तर्करत्न श्री अम्बिकादत्त व्यास, श्री दामोदर शास्त्री, श्री तात्या शास्त्री, श्री शिवसहाय राम, और श्री माधवाचार्य प्रभृतिसे आनन्दबागमें कार्तिक शुक्ला द्वादशी सं० १९२६ को जो अपूर्व शास्त्रार्थ हुआ था उसीकी स्मृतिमें अमेठी नरेश राजर्षि महाराजा भगवान्बख्श सिंहके सुपुत्र राजा रणञ्जय

सिंहने काशी शास्त्रार्थ वेदीका निर्माण कराया है तथा तपोमूर्ति महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वतीने चैत्र शुक्ल एकादशी सं० २०२४ वि० को स्मृतिपट्टका उद्घाटन किया है। सच्चा शास्त्रार्थके लेखकके अनुसार शास्त्रार्थ त्रयोदशीको हुआ था, द्वादशीको नहीं।

यहाँ पर प्रश्न यह उठता है कि शिलालेखमें जय पराजयका उल्लेख क्यों नहीं किया गया ? इससे सिद्ध होता है कि स्वामी दयानन्दजीका पराजय हुआ था। क्या यह सम्भव है कि काशीपुरी जो सृष्टिके आरम्भ कालसे आजतक संस्कृत विद्याका केन्द्र रही है और पण्डितोंकी खान रही है उसके विद्वानोंको कोई पण्डितम्मन्यः व्यक्ति (अपनेको पण्डित माननेवाला) बाहरसे आकर पराजित कर जाये ? कदापि नहीं। और देखिये ! काशी निवासी पं० श्रीकृष्णमणि त्रिपाठीजीने "पुराणतत्व मीमांसा" नामक पुस्तक लिखी है जो सन् ६१ ई०.में लखनऊसे प्रकाशित हुई हैं। उसमें पण्डितजीने परिशिष्टमें स्वामी दयानन्दजीके शास्त्रार्थका वर्णन किया है। (यद्यपि यह विषय पुस्तककी गहराईमें गोता लगाने पर ही मिल सकता है) पृष्ठ ३३४–३३६ में पंडितजीने लिखा है :—

"सं० १६१३ में (यह मुद्रणकी अशुद्धि है क्योंकि शास्त्रार्थ १९२६ विक्रमीय सम्वत्में हुआ था) वैदिक यन्त्रालय अजमेरसे प्रकाशित काशी शास्त्रार्थ नामक एक छोटी सी पुस्तक मुझे मिली थी, उसके भूमिका लेखक महाशयको बड़ा क्षोभ है कि वाराणसीके विद्वानोंकी तरफ होकर काशीनरेशने स्वामी विशुद्धानन्दजीकी विजय तथा स्वामी दयानन्दजीकी पराजयकी घोषणा कर दी थी। इस विषयको लेकर उन्होंने उसकी भूमिकामें बड़े ही असंगत शब्दोंका प्रयोग किया है। इस पर मेरा नम्र निवेदन है कि यदि उन्हें उस शास्त्रार्थके निर्णयसे सन्तोष नहीं है तो शेषं कोपेन पूरयेत्के दुराग्रह-को छोड़कर वे जब और जहाँ चाहें समुचित व्यवस्था करके अपना मोह मिटा लें। आज भी श्री स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वतीजीकी

गद्दीके मान्य महन्त श्री १०८ स्वामी श्रद्धानन्द जी सरस्वती महाराज एवं उनके आश्रित काशीके विद्वान् शास्त्रार्थके लिये सदा सन्नद्ध हैं। श्रीकृष्णमणि जी के इस लेखसे इस बातकी सत्यता पर मुहर लग जाती है कि स्वामी दयानन्दजी काशीमें पराजित हुए थे। इसके अतिरिक्त सच्चा शास्त्रार्थ पुस्तक तो आपके हाथमें ही है। आर्यसमाजियोंकी ईमानदारीका एक ज्वलन्त उदाहरण लीजिये—

सन् १९१६ ई० में हरिद्वारमें स्थित गुरूकुल (कांगड़ी) में सनातन धर्म तथा आर्यसमाजके बीच वर्णव्यस्था पर शास्त्राथ हुआ था। सनातन धर्मके वक्ता स्वर्गीय महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी जी थे तथा आर्यसमाजके वक्ता थे लाला मुन्शीराम (बादमें स्वामी श्रद्धानन्द) जीके सुपुत्र विद्यावाचस्पति श्री युत इन्द्रचन्द्र जी वेदालंकार। वह एक ऐतिहासिक शास्त्रार्थ हुआ था जिसमें बैलगाड़ीमें लादकर पुस्तकें ले जायी गयी थीं। जगद्वन्द्य महात्मा गाँधी जी भी उस सभामें उपस्थित थे और कालान्तरमें किसी प्रसंगमें उन्होंने उस शास्त्रार्थमें सनातनधर्म की विजय हुई थी ऐसा कहा था। उस शास्त्रार्थके सम्बन्धमें "ब्राह्मण सर्वस्व" पत्रिकाके भाग १३ अंक ५, मई १९१६, पृष्ठ २१७–२२१ में एक लेख छपा था उसका कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है—

"इस शास्त्रार्थ पर सहयोगी गढ़वालीने[1] अपने १५ अप्रैलके अंकमें एक टिप्पणी की है उसे हम यहाँ उद्धृत कर इस आलोचनाको यहीं समाप्त करते हैं। गुरूकुल कांगड़ीमें आर्यसमाजी और सनातन धर्मियोंके बीच वर्णव्यवस्था पर जो शास्त्रार्थ हुआ था उसका अभी तक आर्यसमाजियोंने किसी समाचार पत्र में जिक्र तक नहीं किया। मालूम होता है कि आर्यसमाजियोंने ऐसे मुंहकी खाई है कि जबान

---

१ यह कोई साप्ताहिक या मासिक पत्रिका थी अथवा कोई दैनिक अथवा साप्ताहिक समाचार पत्र था इसका कोई निश्चय नहीं हो सका।

तक नहीं हिलती। यदि ऐसा नहीं होता और उस शास्त्रार्थमें आर्यसमाजी सनातनधर्मियोंकी बराबरीके करीब २ भी पहुँचे होते तो आजतक सारे भारतमें इसका शोर मचा देते। दर्शक लोग कहते हैं कि सनातनधर्मके पण्डितका जो असर आर्यसमाजी जनता पर पड़ता था उसका चौथाई भी उनके पण्डितका उन पर नहीं पड़ा। सनातन धर्मी पण्डित शृंखलाबद्ध शास्त्रार्थ करते थे, वेदोंके प्रमाणोंकी झड़ी लगा देते थे और आर्यसमाजी पण्डित पुराणोंकी शरण लेनेके उन्मुख दिखलाई पड़ते थे। अजीब भिन्नता थी, सनातन धर्मके पण्डित ने जन्मसे वर्णव्यवस्था वेदोंसे भली प्रकार सिद्ध कर दी। सनातनी पण्डितोंके मुखिया पं० गिरधर शर्मा ऋषिकुल वाले थे और आर्यसमाजियोंके मुखिया ला० इन्द्र थे।

पं० गिरिधर और ला० इन्द्रका यह शास्त्रार्थ ठीक भागवतके गिरधर और इन्द्रकी आख्यायिका पर संघटित होता है। इन्द्रने व्रजमें अपनी पूजा न होते देख क्रोधमें आकर उसे पानीमें मिला देना चाहा तो गिरिधरने बायें हाथकी अंगुलीमें गोवर्द्धनको उठाकर उसकी रक्षा की थी, इन्द्रका सारा अभिमान जाता रहा था। इसी प्रकार आर्य समाजियोंके इस इन्द्रने मूर्ख ब्राह्मणोंके बराबर भी जब जनतामें अपनी प्रतिष्ठा होते न देखी तो वर्णव्यवस्थाको मिट्टीमें मिलाना चाहा इस पर ऋषिकुलके गिरिधरने सहज ही वेदोंका गोवर्द्धन उठाकर उसका अभिमान चूर २ कर डाला, हम दोनों गिरधरोंको प्रणाम करते हैं। यह लेख एक निष्पक्ष लेखक द्वारा लिखा गया था।

अब सुनिये! इसी शास्त्रार्थके सम्बन्धमें गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी जी की जुबानी जो कि उन्होंने अपनी पुस्तक "आत्मकथा और संस्मरण" के पृष्ठ ७७,७८ में लिखी है। बयान यों है :—

"शास्त्रार्थकी लिपिबद्ध कापी माँगने पर श्री मुन्शीरामजीने कहा

कि अभी तो शास्त्रार्थके रफ नोट ही लिये गये है, उन्हें शीघ्र ही फेयर करके श्री आर्यमुनिजीके हस्ताक्षर कराकर एक कापी आपको भेज दी जायगी। हमारी ओरसे स्वयं श्री शालग्राम शास्त्रीजीने शास्त्रार्थके पूरे नोट ले लिये थे। बहुत दिनों तक गुरूकुलसे शास्त्रार्थकी कोई रिपोर्ट न मिलने पर अपने नोट्सके आधार पर हमने शास्त्रार्थ का विवरण ऋषिकुलके मासिक पत्र "ब्रह्मचारी" में प्रकाशित कर दिया और फिर पहलेके पत्र व्यवहार सहित पुस्तकाकारमें भी उसे छपवा दिया। कलकत्ता समाचार आदि पेपरोंने उसे उद्धृत भी किया था। आर्यसमाजके गुरूकुलके अतिरिक्त कई समाचार पत्रोंने भी अपनी पराजय स्वीकार की और कई समाचार पत्रोंने इन्द्र और गिरिधर नामोंपर यह टिप्पणी लिखी कि—इत्यादि (उपर्युक्त ब्राह्मणसर्वस्वका लेख देखें)।

अब आगेका बयान देखिये—गुरूकुलसे विवरण न मिलने पर हमने पत्र द्वारा श्रीयुत् मुन्शीरामजीको सूचित किया कि हम ब्रह्मचारी में विवरण छाप रहे हैं तब उन्होंने गुरुकुलके साप्ताहिक पत्र सद्धर्म-प्रचारकमें खूब आलोचना लिखी। जब ब्रह्मचारीमें विवरण छप गया तब उसे ही खूब काट छाँट कर अपने पक्षके भाषणोंको खूब बढ़ा चढ़ाकर, सजाधजाकर, हमारे भाषणोंको खूब काट छाँटकर सद्धर्म-प्रचारकमें छाप दिया। अनेक कारणोंसे हमें विश्वास हो गया कि उनके पास कोई रिपोर्ट नहीं थी, हमारे छापे विवरणको ही अपनी कारीगरीके साथ उन्होंने भी प्रकाशित किया है। उनके विवरणकी मैंने तत्काल "महात्माजीकी सत्यवादिता" शीर्षकसे लम्बी आलोचना ब्रह्मचारीमें लिखी जिसमें उनके आक्षेपोंके जवाबके साथ ही यह भी साफ लिख दिया कि उनका विवरण ब्रह्मचारीमें छपे विवरणकी काटी छाँटी हुई नकलके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

लीजिये ! आर्यसमाजियोंके उदात्त चरित्रका एक और नमूना

प्रस्तुत है। तारीख २०-८-५३ को स्वर्गीय महामहोपाध्याय पण्डित श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदीजी के ज्येष्ठ पुत्र पण्डित देवीदत्त चतुर्वेदी जीने अपने पिताजीको हिण्डौनसे (राजस्थान) एक पत्र लिखा जिसमें समाजियोंकी काली करतूतका नग्न चित्र अंकित है। पत्र इस प्रकार है :—

॥श्रीः॥ हिण्डौन २०-८-५३। प्रातःस्मरणीय श्रीचरणोंमें सविनय प्रणाम। गतकल सायं हिण्डौन आ पहुँचा था। श्री काकाजीका स्वास्थ्य बिलकुल ठीक है। यहाँ ब्राह्मण वैश्योंमें बड़ा संघर्ष चल रहा है। एक प्राचीन शिव मन्दिरमें कुछेक आर्यसमाजी वैश्योंने जलहरी सहित शिवलिंगको उखाड़कर दूसरे स्थान पर रख दिया— साथ ही श्री हनुमान्जीकी एक मूर्ति भी अपने स्थानसे हटाकर दूसरी जगह रख दी है। इसको लेकर यहाँके ब्राह्मण वर्गमें बड़ा क्षोभ उत्पन्न हो गया है। गवर्नमेंटमें केस दायर किया गया। राज्याधिकारियोंने मौज-मन्दिरसे व्यवस्था मँगवाई। वहाँसे लेख आया कि शिवलिंगको उखाड़ने वाला प्रायश्चित्तका अधिकारी है और यदि शिवलिंग खण्डित नहीं हुआ हो तो उस ही की पुनर्यथास्थान प्रतिष्ठा कराई जावे। अब वैश्य वर्ग इस बातको सिद्ध करने पर तुल रहे हैं कि शिवलिंग सर्वथा अखण्डित है, उस ही की पुनः प्रतिष्ठा हो जावे जबकि ब्राह्मणवर्गका कहना है कि शिवलिंग पर प्रहार किया गया है। जलहरीके पार्श्व भागमें कुछ अंश खण्डित भी हुआ है जो सीमेंट लगाकर अखण्डितवत् बना दिया गया है। अतः उक्त शिवलिंगको गंगामें प्रवाहके लिये भेजा जावे और यहाँ नये शिवलिंगकी स्थापना की जावे। अब यह प्रश्न दोनों समाजोंमें (ब्राह्मण तथा वैश्योंमें) दो रूप लिये हुए है—एक तो धार्मिक मर्यादाका प्रश्न तथा दोनों वर्गमें अपनी अपनी बात रखनेका प्रश्न हो गया है।

ऐसी स्थितिमें वास्तविक कर्तव्य क्या है इस विषय पर अति-शीघ्र प्रकाश डालिये और साथ ही कुछ प्रमाण भी लिख भेजिये तथा २४ विद्वानों सहित आपके हस्ताक्षर भी ताकि यहाँके ब्राह्मण वर्गको कुछ बल प्राप्त हो सके। अन्यथा यहाँका वैश्य वर्ग भविष्यमें ब्राह्मणोंको सदा तंग करते रहेंगे। इस विषयका इस ही समय पुख्ता इलाज हो जाना चाहिये।

मुझे जयपुरमें अचानक तार मिला था कि काकाजीकी हालत खराब है, अतिशीघ्र आओ। किन्तु यहाँ आने पर ज्ञात हुआ कि केवल इस बहाने मुझे यहाँ बुलाया गया है। काकाजी तो पूर्ण स्वस्थ हैं। सुना है आज मौज मन्दिरसे कोई विद्वान निरीक्षणार्थ यहाँ आ रहे हैं। मुझे सम्भवतः २-४ दिन यहाँ ठहरना पड़ जावे अतः जयपुर की सारी व्यवस्था मुनमुन तथा प्रेमनारायणको लिखकर ठीककर दीजिये। चि. शास्त्रीसे शुभाशीः जीजीसे प्रणाम, बच्चेसे असीस। आ० देवीदत्त। इसके बाद क्या हुआ इसका विवरण हमें प्राप्त नहीं हो सका। यह पत्र गिरिधर साहित्यिक शोध संस्थानके सौजन्यसे मुझे प्राप्त हुआ है। स्वर्गीय महामहोपाध्यायजीके अमूल्य पत्र संग्रह तथा डायरियोंके सम्पादनका भार उक्त संस्थानने मुझे सौंपा है। समय आने पर उनको प्रकाशित किया जायगा।

हाँ, तो देख ली न आपने आस्तीनके साँपोंकी काली करतूतें! उधर गड़े मुरदेको उखाड़ना निश्चित हो गया है और सालभर पहिलेसे उसके लिये तैयारी हो रही है। मुरदा उखड़ेगा तो गन्दगी जरूर फैलेगी ही। उस गन्दगीके कीटाणुओंको समाप्त करनेमें हमारी यह बकवाद और ५३ वर्ष पुरानी यह पुस्तक डी० डी० टी० और फिनाइलका काम करेंगी। बोल! सनातन धर्मकी, जय।

आश्विन शु० १० (विजयादशमी) स० २०२६ वि० २० अक्टूबर १९६९ ई०

स्वामी केशवपुरी,
—सम्पादक

आर्य समाज की घोषणाएँ

(१)

दयानन्द काशी शास्त्रार्थ शताब्दि समारोह नवम्बरमें

जिला आर्योपप्रतिनिधि सभाकी अन्तरङ्ग समितिकी बैठक रविवारको सुबह १० बजे आर्यसमाज मन्दिर भोजूवीरमें श्री खेमचन्दकी अध्यक्षतामें हुई। सभा मन्त्री श्री कैलाशनाथ सिंहने बताया कि महर्षि दयानन्द काशी शास्त्रार्थ शताब्दी समारोह आगामी १६ से २१ नवम्बर तक काशीमें अखिल भारतीय स्तर पर मनाया जायगा जिसमें देश और विदेशके अन्तर राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त आर्यजगतके मूर्धन्य विद्वान् भाग लेंगे। समारोहकी तैयारी प्रारम्भ कर दी गयी है। प्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेशके तत्त्वावधान में सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न होंगे। काशी शास्त्रार्थके प्रमुख विषय "मूर्तिपूजा वेद विरुद्ध है" पर १५ अक्टूबर से १५ नवम्बर तक पूरे भारतमें आर्य जगत्के शास्त्रार्थ महारथियों द्वारा शास्त्रार्थ होगा। इस अवसर पर 'सम्मति पत्रिका' तथा वेदोंकी मान्यताओं एवं आर्यसमाजके सिद्धान्तों सम्बन्धी शोध पत्रिकाके प्रकाशनकी भी बृहत् योजना है।

शास्त्रार्थ शताब्दी उपसमितिके लिए सर्व श्री खेमचन्द, कैलाश नाथ सिंह, केदारनाथ आर्य, भगवतीप्रसाद और विश्वनाथप्रसाद उर्फ झींगन साहु चुने गये हैं। इसके अतिरिक्त ११ सदस्य उत्तर प्रदेशके अन्य जनपदों के हैं। ("आज" दैनिक समाचार पत्र, काशी, दिनाङ्क २४ जुलाई सन् १९६९ ई. से उद्धृत)।

(२)

महर्षि दयानन्द काशी शास्त्रार्थ शताब्दी समारोह

महर्षि दयानन्द काशी शास्त्रार्थ शताब्दी समिति उत्तरप्रदेशकी

बैठक रविवार २४ अगस्तको सुबह १० बजेसे काशी आर्यसमाज बुलानालाके सभाकक्षमें समितिके संयोजक श्री महेन्द्र प्रताप शास्त्री उपकुलपति कन्या गुरुकुल हाथरस (अलीगढ़) के सभापतित्वमें हुई। निर्णय हुआ कि शताब्दी समारोह आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश द्वारा स्थानीय आनन्द बागमें १६ से २१ नवम्बर तक मनाया जायगा जिसमें देश-विदेशके तथा सर्व धर्मावलम्बी विद्वान् भाग लेंगे। बिषय होगा—वेद ईश्वरीय ज्ञान है। १६ अक्टूबर से १५ नवम्बर तक सारे देशमें आर्य विद्वानोंकी शास्त्रार्थ यात्रा होगी। विषय होगा—मूर्तिपूजा वेदानुकूल है या नहीं। सार्वदेशिक स्तर पर मनाये जाने वाले इस समारोहके लिए वाराणसी आर्योपप्रतिनिधि सभाके मन्त्री श्री कैलाशनाथ सिंह शास्त्रार्थ समितिके उपसंयोजक सर्व सम्मतिसे निर्वाचित हुए। शास्त्रार्थ समितिके प्रधान श्री प्रकाशवीर शास्त्री संसद् सदस्य हैं। उपसंयोजक श्रीसिंहको वाराणसी मण्डलके सभी जनपदोंकी मिश्रित स्वागत समिति बनानेका कार्यभार सौंपा गया। शास्त्रार्थ महोत्सवमें प्रातः ७ से ३ बजे तक यज्ञ और प्रवचन (प्राचीन कालकी शैली पर एक श्रौत यज्ञ भी होगा), ६ से १२ बजे तक विभिन्न परिषदोंकी बैठकें। २-३० से ५ तक विभिन्न सम्मेलन (यथा सर्व धर्म और महिला सम्मेलन), रात्रि ७ से १० बजे तक महापरिषद् सम्मेलनका आयोजन है। इस अवसर पर महर्षि दयानन्दके सभी शास्त्रार्थ लेखोंके संग्रह तथा शोध प्रवन्धोंका प्रकाशन आचार्यद्वय देवदत्त शर्मोपाध्याय तथा विश्वश्रवा व्यास (प्रचार मन्त्री) की देखरेखमें सम्पन्न होगा। शास्त्रार्थ समितिका कार्यालय काशी आर्यसमाज बुलानालाके कक्ष संख्या २ में खुल गया है। वाराणसी आर्योपप्रतिनिधि सभाने डाक्टर विश्वमित्र (मैसूर) को उचित सम्मानके साथ यहाँसे विदा करनेका निश्चय किया है। ("आज" दैनिक समाचार पत्र, काशी, दिनाङ्क २८ अगस्त सन् १९६९ ई० पृष्ठ ३ से उद्धृत)। (शेष पृ०१६ पर)

ॐ

भूमिका

मैं काशी क्वीन्स कालेजमें मध्यमादि परीक्षा देकर जब आचार्य परीक्षा दे रहा था उस समय अपने एक मित्रसे सुना कि दयानन्दियों का सिद्धान्त है कि प्रतिमापूजा सनातन धर्मियोंमें जैन सम्प्रदायसे आई है और सनातनधर्ममें प्रतिमापूजाका प्रचार हुए दो हजार वर्ष हुए हैं। यह बात सुनकर मैं जैन (आर्हत) ग्रन्थ देखने लगा। उस समय काशीमें प्रह्लादघाट पर अभिधान राजेन्द्र नामक एक कोष (डिक्सनरी) बनता था। मैं उसके निर्माणमें नियुक्त हुआ, मैं उक्त कोषका संग्रह, प्रकाशन (छपाना) और संशोधनका कार्य दशवर्ष तक किया और समस्त जैन ग्रन्थ आद्यन्त मेरे देखनेमें आये परन्तु मुझे कहीं पर यह लेशमात्र भी मालूम न हुआ कि प्रतिमा पूजा जैनियोंने ही चलाई है और न यही मालूम हुआ कि दो हजार वर्षसे चली है प्रत्युत कई जगह जैन ग्रन्थोंमें लिखा है कि अनादि कालसे प्रतिमा पूजा चली आती है। सच पूछो तो स्वामी दयानन्दजी ने, जैन सम्प्रदायमें एक ढुंढक सम्प्रदाय है उसका अनुकरण किया है। ढुंढक सम्प्रदायी जैनी मूर्ति नहीं मानते हैं, स्वामी जी का भी यही सिद्धान्त है। ढुंढक सम्पूर्ण जैन ग्रन्थोंको नहीं मानते हैं अर्थात् सूत्र, भाष्य, निर्युक्ति, चूर्णि, टीका यह पञ्चाङ्गी कहाती है, इसको ढुंढकोंके अतिरिक्त सभी जैनी प्रमाण मानते हैं। ढुंढक केवल सूत्रोंको ही प्रमाण मानते हैं। उक्त स्वामी जी भी केवल वेद ही को प्रमाण मानते हैं। ढूंढक सब उपनिषद् पुराण इतिहासको प्रमाण नहीं मानते हैं। सम्पूर्ण सूत्रोंको भी प्रमाण नहीं मानते हैं अर्थात् पैंतालीस सूत्र (ग्रन्थ) हैं, उनमें केवल बत्तीस ग्रन्थ प्रमाण मानते हैं और तेरह ग्रन्थ अप्रमाण मानते हैं। यदि बत्तीस ग्रन्थोंके ही मध्यमें पैंतालीस

ग्रन्थोंके नाम प्रमाण माननेमें आ जाँय तो उस पाठको प्रक्षिप्त कह कर छुटकारा कर देते हैं। स्वामी जी भी सब वेदोंको प्रमाण नहीं मानते हैं, केवल संहिता भागको ही प्रमाण मानते हैं और संहिता भागमें भी जब अवतार, श्राद्ध, तीर्थ, प्रतिमादिकोंके प्रमाण मिलते हैं तब उसका अयुक्त अर्थ करने लगते हैं और यदि उससे भी छुटकारा न हुआ तो ढुंढकोंकी युक्ति तैयार रखते हैं। ढुंढक भी तीर्थ नहीं मानते हैं, स्वामीजी भी तीर्थ नहीं मानते हैं। अब सामाजिक भाइयों ! सोचो कि दयानन्दजीने अपना सम्प्रदाय ठीक जैन ढूंढकोंको देखकर चलाया है या नहीं। क्या कुछ भी ढुंढकोंकी बात छोड़ी है। जब आपके सामने ढुंढक सम्प्रदाय विद्यमान (मौजूद) है और आप संशोधक हैं. तो देखिये कि यह नया ढंग नवीन जैन ढुंढक सम्प्रदायको देखकर मनमाना अपना सम्प्रदाय (मजहब) स्वामीजीने चलाया है या नहीं (ढुंढक करीबन तीन सौ वर्ष से चला है यह सम्प्रदाय-मीमांसामें मैं लिखूँगा) और सनातन वैदिक सम्प्रदायको नवीन कहकर लोगोंको भ्रान्त करना चाहते हैं। जब यह मुझे निश्चय रूपसे मालूम हुआ तब मैंने गुजरातमें वडसार, गणदेवी इत्यादि गाँवोंमें सामाजिक विद्वानोंसे शास्त्रार्थ करके बहुतसे निराग्रही सामाजिकोंको सत्य सनातन धर्ममें लाया। अस्तु कुछ कालके अनन्तर मैं उस अभिधान राजेन्द्र कोषके कार्यसे जो कि बनारससे रतलाम मालवामें आ गया है, वहाँसे लाहोर चीफ्स (राजकुमार) कालेजमें आया हूँ। मुझे यहाँ आये चार वर्ष हुए। यहाँ कतिपय लोगोंने मुझसे जिज्ञासाकी, कि दयानन्दजीका काशीमें जो शास्त्रार्थ हुआ था उसमें किसका जय हुआ था ? मैंने उन लोगोंसे कहा कि दयानन्दजी निरुत्तर हो गये थे यह मुझे विश्वस्त रूपसे मालूम है, परन्तु इतनेसे उन लोगोंको सन्तोष न हुआ क्योंकि यहाँ सामाजिकोंने अपने तरफसे मनमाना (कपोलकल्पित) काशीका शास्त्रार्थ छपाकर प्रसिद्ध कर रक्खा हैं, जो प्रमाणके लिए पाठ दिये

गये थे, उन पाठोंको नहीं दिखाया है। पाठके देखनेसे साफ जय पराजयका निश्चय हो जायगा। महाशयों देखो पुराण प्रमाणके लिये जो पाठ दिया गया है, उसके अर्थ करनेमें अथवा अर्थ बदलनेमें यदि सब दयानन्दी मिल जाँय तब भी अर्थ नहीं बदल सकता, लेकिन आश्चर्य यह है कि कपोल कल्पित काशी शास्त्रार्थ पाठ न दिखाकर जो कह दिया गया कि 'पुराण विद्या' यह पाठ माधवाचारी जीने दिया है यह कितना अन्याय है। असल पाठको छिपाकर लोगोंको जो अन्धकारमें डालते हैं उनको इस घृणित निन्दनीय कार्यको छोड़कर सही पाठ दिखा देना चाहिये। शुक्ल यजुर्वेदीय शतपथका पाठ जो कि उस समय माधवाचारीजीने दिखाया था वही यहाँ दिखाया गया है जिससे स्पष्ट मालूम होता है कि अश्वमेध प्रकरणमें 'अष्टमेऽहन'के प्रकरणमें 'इतिहासो वेदः' है और 'नवमेऽहन' के प्रसंगमें 'पुराणं वेदः' है, जो कि पूरा पाठ दिखाया गया है और जिसको बहुत काल तक दयानन्दजी पत्रा लौट पौटकर देखते रहे और अन्तमें पत्रोंको रखकर चुप होकर नीचा शिर कर करके बैठ गये थे, देखो और विचारो यह पाठ स्वामीजीको नीचा दिखा सकता है या नहीं ?

इस सच्चे काशी शास्त्रार्थमें जो मनुष्य जो कुछ बोला है वही लिखा गया है यहाँ तक कि भाषामें भी अनुकरण किया गया है। यह विषय उस समय संस्कृतमें प्रत्नकम्र-नन्दिनी नामक जो मासिक पत्रिका निकलती थी उसीसे उद्धृत किया गया है। मुझे उक्त पत्रिका गवर्नमेन्ट लाईब्रेरियन पं. विन्ध्येश्वरी प्रसाद जी की सहायतासे उपलब्ध हुई थी। हम आशा करते हैं कि इस सत्य काशी शास्त्रार्थको देखकर सामाजिक भाई आग्रहको छोड़कर दयानन्दजी का पराजय मानकर कल्पित (जैन ढुंढकोंका अनुकरण करने वाले) आर्यसमाजको छोड़कर सत्यवैदिक सनातनधर्मको स्वीकार करेंगे।

अलं बहुना; पं मथुराप्रसाद दीक्षितः

(पृष्ठ १३ का शेष)

यहाँ पर यह बात विचारणीय है कि पहिली घोषणामें शास्त्रार्थ का विषय "मूर्तिपूजा वेद विरूद्ध है" यह बताया गया था जब कि दूसरी घोषणामें शास्त्रार्थका विषय "मूर्तिपूजा वेदानुकूल है या नहीं" यह बताया गया है। दूसरी बात यह है कि द्वितीय घोषणामें एक ओर यह कहा गया है कि सर्व धर्मावलम्बी विद्वान् भाग लेंगे और विषय "वेद ईश्वरीय ज्ञान है" यह कैसी असङ्गत बात है ! सर्व-धर्मालम्बी मनुष्य वेदको ईश्वरीय ज्ञान कबसे मानने लगे !

—सम्पादक।

आवश्यक निवेदन

(१) दयानन्दका सच्चा शास्त्रार्थ पुस्तकके प्रथम पृष्ठ पर प्रकाशित 'नोट' (संस्कृतमें) द्वारा स्वामी दयानन्दजी तथा उनके गुरुजीका परिचय लेखकने दिया है।

(२) पुस्तकमें छपा 'समीक्षक' शब्द लेखकका परिचायक है।

(३) सच्चा शास्त्रार्थ पुस्तकमें सम्पादकने मूल पाठमें अपनी ओरसे एक शब्द भी घटाया बढ़ाया नहीं है। हिन्दी अनुवाद भी ज्योंका त्यों रखा है। मुद्रणकी अशुद्धियोंका शोधन तथा मुद्रणकी सजावट सम्पादकके कार्य हैं।

(४) यह पुस्तक लेखकने पं० अनन्त शास्त्री फडकेजीको तारीख २२-२-५५ को भेट की थी। श्री फडकेजीने इसके मुद्रण, तथा प्रचारादिका भार सम्पादकको सौंपा।

—सम्पादक

॥ श्रीः ॥

दयानन्दका-सच्चा शास्त्रार्थ

सूचना—(१) संस्कृतज्ञ पाठकोंसे निवेदन है कि 'सच्चा शास्त्रार्थ' का सच्चा आनन्द प्राप्त करना है तो इसका हिन्दी अनुवाद अवश्य पढ़ें।

(२) मूल पुस्तकमें वक्ताओंके नाम संक्षिप्त छपे हैं, पाठकों की सुविधाके लिए यहाँ पूरे नाम छापे गये हैं।

—सम्पादक

काशीस्थराजसभायांप्रतिमापूजनविचारः

यथाक्रममिममवगन्तुमनेके कुतूहला इति वचसा पत्रादिना च विज्ञायेह यत्नतोऽवतार्यते।

नोट—गुर्जर निवासी व्याकरणाद्यंगेषु सामवेदे च कृतश्रमः किन्त्वनधीतदर्शनस्ततो दर्शनविहीनो मथुरायां निवसतिस्म कश्चिदन्धोऽनेक पण्डितमतविरुद्धः प्रतिमापूजनादीनामवैधत्ववादी तस्यशिष्यश्चत्वारिंशद्वयस्कः सुदीर्घकायः पुष्टोबलवांश्च लक्ष्यते।

महाराज बनारसकी सभामें प्रतिमापूजन विषयक शास्त्रार्थ—

इस शास्त्रार्थके यथार्थ (ठीक २) स्वरूप (हाल) जानने के लिये बहुत लोगोंने मुझसे अपनी उत्कण्ठा प्रकाशित (जाहिर) की और

कश्चिद्दयानन्दो नाम साधुः सद्धर्माविर्भाविनासद्धर्मपरिलोपने ऽहंकृतसंकल्प इति घोषयन्नकस्मादावेदयत्काशीनरेशं श्रीमदीश्वरीप्रसादनारायणसिंहमशास्त्रीयत्वात्प्रतिमापूजनमवैधमिति विचारेण स्थिरीकर्तुमहमत्रागत इति विदित्वा च महीपालस्तदीयात्मभावं ससमादरं कृत्वा विचारायसम्मतिमपालयद्धर्मपालकार्यम् । ततो भोग्यमात्यवरवर्योऽपि च त्यक्तभोगः सर्वशास्त्रसारसारोऽसारीकृतसंसारः सीतारामीयः श्रीहरिहरप्रसादशर्मा

मेरे पास अनेक पत्र आये इससे मैं यहाँ पर (इस पुस्तकमें) इस शास्त्रार्थको प्रकाशित करता हूँ ।

कोई दयानन्द नामक एक साधु था जो कि लोगोंमें अपनी इस प्रसिद्धिको जाहिर करता था कि मैं यथार्थ धर्मका स्थापन और पाखण्ड का लोप करना चाहता हूँ । वह एक रोज (अकस्मात्) विना सूचना के ही महाराज काशी नरेश श्रीमान् ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंहजी की सभामें पहुँचा और यह कहने लगा कि प्रतिमापूजन शास्त्रोंसे सिद्ध नहीं है, यह प्रतिमापूजन पाखण्ड है । मेरा यही निश्चय है, मैं यहाँ शास्त्रार्थ करनेको आया हूँ । यह सुनकर महाराज काशीनरेशजी ने वही कार्य किया जो कि महाराजाओंको ऐसे अवसर पर करना चाहिये । उस साधु दयानन्दजी का आदर पूर्वक अतिथि सत्कार करनेके बाद श्रीमान् हरिहर प्रसादजीने शास्त्रार्थका प्रस्ताव छेड़कर स्वामीजी से यह कहा कि आप दिनका निश्चय कीजिये, और मध्यस्थ किसको मानेंगे ? उसके उत्तरमें स्वामीजीने कहा कि मैं साधु हूँ और मध्यस्थमें मैं किसीको नहीं मानता हूँ क्योंकि सभी लोग अवैदिक कार्य करने वाले हैं । यह बात सुनकर राजकीय पण्डितोंने लेख शास्त्रार्थके लिये कहा, लेकिन महाशय दयानन्दजीके पैर इस (लेख शास्त्रार्थकी)

विचारस्य दिनस्थिराय मध्यस्थनिर्णयाय च प्रयतमानो वादिन-मजिज्ञपत्, ज्ञापितश्च सः, अहमुदासीनः, सर्वदैवावसरो मम, किंचात्र न मयाकोऽपिमध्यस्थः स्वीक्रियते सर्वेषामेव मिथ्याचारित्वदर्शनादित्यवोचद्वचः। श्रुत्वैतद्राजकीयकोविदा लिखित-विचारेऽभवन् कृतप्रयत्नाः, परं तत्रापि वाद्यसंमतेर्न ते पूर्णमनो-रथाः। ततो महाराजसदसियोऽग्रवरः पण्डितः श्रीताराचरणो नाम तार्किकः स एकदा बलाबलपरीक्षणाय प्रच्छन्नवेशो वादि-

---

शर्त पर भी न जमे। अस्तु; उस रोजकी सभा, जिस तरहसे आप शास्त्रार्थ करेंगे वही (आपके कथनानुसार) नियम स्वीकार किया जायगा यह कहकर विसर्जित हुई। तदनन्तर एक रोज श्रीमान् पण्डित ताराचरण तार्किक जो कि महाराज काशीनरेश जी के यहाँ मुख्य पण्डित थे और समस्त पृथ्वी मण्डलमें उनके समान न्याय शास्त्रमें दूसरा कोई नहीं था। उन्होंने नदिया शान्तिपुरमें पूर्ण विद्याभ्यास किया था। वह प्रच्छन्नवेश (साधारण पण्डितके वेश) से स्वामीजीकी विद्वत्ताकी परीक्षा करनेको भेजे गये कि स्वामीजी कुछ पढ़े लिखे हैं या यों ही आडम्बर करते हैं। अस्तु, परीक्षा करनेके अनन्तर पण्डित ताराचरणजीने तब सभासदोंसे यह आकर कहा कि यह स्वामी दर्शन शास्त्रोंका या तर्कका लेश मात्र भी नहीं जानता है। यह बड़ा ही ढीठ, अपनेको प्रसिद्ध करनेके लिये शास्त्रार्थ करना चाहता है। यह बड़ा ही मसखरी करनेमें तेज है, यह अकारण मसखरी कर देता है। यह सुनकर लोगोंकी उपेक्षा हो गई और काशीस्थ विद्वानोंने भी यह जानकर स्वामी दयानन्दको बड़ी गिरी निगाहसे देखा। इस तरह सर्वत्र स्वामीजी लोगोंकी निगाहसे गिर गये। लेकिन हरिहर प्रसादजीने (जिनका वर्णन पहले आ चुका है

नमुपगत्यासौ नाधीतविद्योऽपि तु साहसिकः सहसा विचारोपहसने प्रवृत्त इति बुद्ध्वाऽबोधयत्तदेवान्यान् सभासदः काशीस्थानन्यांश्च संख्यावतः। इत्थमभवत्सर्वैरूपेक्षणोयः स साधुः समन्तात्। अथ पूर्वकीर्तिताह्वेन सीतारामीयेण विचारितम्, वाद्यसौ पण्डितो वा धूर्तो वा भवतु परमेतर्हि काशिराजसभामुपगतो विचारायकश्चिदिति भूतः प्रवादो दुर्निवार्यः, अतो लोकप्रबोधनाय तु विचारायोजनमवश्यं कार्यमिति, तथा च

उन्होंने) इस बात पर जोर दिया कि वादी पण्डित हो या मूर्ख परन्तु महाराजकी सभामें विचारके लिये कोई गया था और उसके साथ किसीने भी शास्त्रार्थ नहीं किया, इस लोकापवादकी निवृत्तिके लिये शास्त्रार्थ कराना जरूरी है। इस (साधु) की पोल जब तक खुल नहीं जायगी तब तक लोगोंको संतोष नहीं होगा, इससे "शास्त्रार्थ होना जरूरी है" इस निश्चयके अनन्तर महाराज काशी नरेशजी ने अनेक पण्डितोंके साथ शास्त्रार्थका समय निर्धारित (निश्चित) करके उक्त स्वामी जी को सूचना दी कि अमुक समयमें आनन्दबागमें शास्त्रार्थ होगा। अनन्तर निर्द्धारित समयमें चान्द्रमास (कार्तिक) शुक्ल त्रयोदशी, सौरमास मार्गशीर्ष (अगहन) २ बजे अनेक पण्डितोंके, बड़े बड़े रईस साहूकारोंके, अपने मन्त्रीके और युवराज श्रीमान प्रभुनारायण सिंह जी के साथ अमेठी राजा माधवसिंहके आनन्दबागमें जो कि काशी जी में दुर्गाजीके पास दुर्गाकुण्डके ऊपर पूर्व तरफ है वहाँ उपस्थित हुए। वहीं स्वामी दयानन्दजी ठहरे थे। सभासद यथास्थान बैठ गये। स्वामी दयानन्दजी के सामने पण्डित ताराचरणजी, जो कि महाराजकी सभाके प्रधान पण्डित थे वे बैठे उनके पास श्री स्वामी विशुद्धानन्दजी और बालशास्त्री और वैया-

बहुभिः पण्डितैर्विचारसमयं निर्धार्य ज्ञापितः स वादी। अनन्तरमुपस्थिते तत्समये* राजाज्ञयाहूतैरत्रत्यैर्विविधशास्त्रविशारदैरन्यूनशतकोविदैः समलंकृते काश्यांदुर्गाकुण्डसमीपे आनन्दबागाख्योपवने सदानन्दः श्रीमानानन्दकाननेशोमहाराजः श्रीमता यौवराज्याभिषिक्तेन प्रभुनारायणसिंहशर्मणा राजकुमारेण अन्यैश्चात्रत्यैः कतिपयैः सुप्रसिद्धधनिभिः स्वामात्यवर्गैश्च सानन्दं समागत्योक्तनाम तर्करत्नमादिशत्, क्रियतां तावत् शास्त्रार्थं

करण केसरी सखाराम भट्ट जी प्रभृति भी बैठे। महाराज काशीनरेशजीने ताराचरणजी से कहा कि आपलोग शास्त्रार्थ करें, मैं भी शास्त्रार्थको पूरा ध्यान देकर सुनता हूँ, मैं पक्षपातको छोड़ कर मतलबके तरफ ध्यान दूँगा और जिसका प्रबल पक्ष होगा मैं उसीको अच्छा समझूँगा। अस्तु, महाराज काशीनरेशजी तथा समस्त कर्मचारी और सेठ साहूकार सभी उसी पक्षको माननेको उद्यत मालूम देते थे जो पक्ष दोनोंके शास्त्रार्थमें उत्तम ठहरै। पाठकगण स्मरण करैं कि यही दशा उज्जैनमें जब श्री स्वामी शंकराचार्यजी से और बौद्धोंसे शास्त्रार्थ हुआ था तब हुई थी. भेद इतना ही था कि उस समय राजसत्ता दूसरे प्रकारकी थी; इस समय धर्ममें आजादी है, जिसके मनमें जैसा आता है वह वैसा ही मानता है। इसीसे उस समय बौद्धोंके पराजय होते ही बौद्धोंका अभाव सा हो गया था और समस्त हिन्दुस्तानमें सनातनधर्मकी पताका फहरा गई थी, और बौद्धोंके पराजय हो जानेसे कोई भी बुद्ध मजहब मान नहीं सकता था। हमारे गवर्नमेंटके राज्यमें धर्म माननेको कोई मज-

* वैक्रमीय १९२६ वर्षे तत्परदिनापराह्णेसौराग्रहायणस्य द्वितीय दिवसीये चान्द्रकार्तिक त्रयोदशीयुतमङ्गलवासरीये।

इति अहमपि वादिप्रतिवादिवचः सारानुवदने नियुक्तोऽग्रसरः-पक्षपातशून्यो विचारदत्तकर्णः संयतोऽस्मि ।

ताराचरणः—वक्तुमुद्यतः ।

दयानन्दः—(एक एव वदेन्नान्य इति ब्रुवन्) प्रतिमापूजनं वेदे क्व लिखितमिति कथ्यताम् ?

ताराचरणः—एतन्मात्रं प्रमाणं नान्यदत्र किं प्रमाणम् ?

दयानन्दः—वेदे यन्न दृश्यते तदप्रमाणमेव ।

दूर नहीं किया जाता है, इसीसे स्वामी दयानन्दजी के पराजय होने पर भी हजारों मनुष्य धर्मबन्धनको यथार्थ समझते हुए भी आजादी के लोभसे सामाजिक हो रहे हैं । अस्तु, प्रकृतके तरफ ध्यान दीजिये । महाराज काशीनरेश जी की आज्ञा पाकर ताराचरण जी कुछ कहना चाहते थे कि, स्वामी दयानन्द जी ने प्रश्न किया कि—

दयानन्द—प्रतिमा पूजन वेदमें कहाँ लिखा है ? यह कहिये और एक ही आदमीको बोलना चाहिए, दूसरा न बोले । (समीक्षक) ठीक भी ऐसा ही होता है, वादी प्रतिवादीके अतिरिक्त केवल दूसरा मध्यस्थरूपसे बोल सकता है, अनेक मनुष्योंके युगपत् बोलनेसे कुछ भी सारांशका निर्णय नहीं होता है ।

ताराचरण—केवल वेद ही प्रमाण है और कुछ (स्मृति, इतिहास, पुराण इत्यादिक) प्रमाण नहीं हैं इसमें क्या प्रमाण है ?

दयानन्द—जो वेदमें नहीं मिलता है वह प्रमाण नहीं है ।

ताराचरण—कैसे (अर्थात् जो वेदमें न मिलै, और स्मृति पुराण इत्यादिकमें मिलै वह प्रमाण क्यों न माना जाय ? यह प्रतिवादी स्वामीजीको स्मृति, इतिहास, पुराणादिकोंको प्रमाण मनानेके लिये निग्रहस्थानमें खींच रहा है) ।

ताराचरणः—कथम् ?

दयानन्दः—वेदविरुद्धानां नास्ति प्रामाण्यम् ।

ताराचरणः—अत्र किं प्रमाणम् ?

दयानन्दः—श्रुतिर्मनुस्मृतिश्च प्रमाणम् ।

ताराचरणः—तदेवोद्भावय ।

दयानन्द—वेदसे विरुद्ध वस्तु अर्थात् प्रतिमा पूजन करना इत्यादिक प्रमाण नहीं है ।

ताराचरण—इसमें क्या प्रमाण है अर्थात् वेद विरुद्ध वस्तु सदाचार, कुलधर्म, प्रतिमा पूजन इत्यादिक प्रमाण नहीं हैं इस आपके प्रतिज्ञा वाक्यमें क्या प्रमाण है ? तात्पर्य यह है, कि यदि कोई अनुमिति रूपसे आप कहते हैं तो हेतु कहिये, शब्दप्रमाणसे कहते हैं तो उस ग्रन्थका नाम लीजिये ।

दयानन्द—श्रुति (वेद) और मनुस्मृति प्रमाण हैं ।

ताराचरण—उसीको कहिये, अर्थात् जो वेदका मन्त्र 'वेदातिरिक्त स्मृति, पुराण, इतिहास, सदाचार इत्यादिकोंके प्रामाण्यका निषेधक है' उसको कहिये अथवा मनु महर्षिजीके वचनको कहिये कि कहाँ पर मनुमें लिखा है ? (समीक्षक) मेरी समझसे यहीं पर जय पराजयका अन्तिम निश्चय (फैसला) है । यदि स्वामीजी कोई वेद मन्त्र अथवा मनुवचन ऐसा दिखा दें कि जिससे यह सिद्ध हो जाय कि केवल वेदोक्त ही प्रमाण है, तब तो पं० ताराचरणजीको वेदके मन्त्रसे प्रतिमापूजन सिद्ध करना चाहिए और यदि स्वामीजी कोई वेद मन्त्र या मनुका वचन न दिखा सके तो स्वामीजी हार गये । दूसरी बात यह कि प्रतिज्ञा हानि जो कि पूर्णरूपसे पराजयको सिद्ध करती है, स्वामीजी केवल वेद ही प्रमाण मानते थे लेकिन प्रतिवादी-

दयानन्दः—प्रामाण्यविचारो भविष्यति पश्चात् पूर्वं वेद-विचारः कर्तव्यः।

ताराचरणः—वेदविचारः कीदृशः कर्तव्यः, वेदस्य नित्यानित्यत्वविचारः प्रामाण्याप्रामाण्यविचारो वा ?

दयानन्दः—पाषाणादिप्रतिमापूजनं वेदोक्तं नवा इति ?

ताराचरणः—अस्माकं यथा वेदस्य प्रामाण्यं तथा सर्वेषाम्।

ने मनुको भी आपसे आप स्वामीजीको प्रमाण मना दिया, लेकिन वहाँ भी जव कोई वचन वेदातिरिक्त प्रमाणका निषेधक न मिला तव स्वामीजीको खूव सूझी; देखिये पाठकगण! जिससे दूसरे समझेंकि उत्तर दे रहे हैं और वस्तुगत्या साफ निरुत्तर हैं, यह स्वामीजीका प्रथम डवल पराजय हुआ।

दयानन्द—प्रामाण्य (क्या प्रमाण है और क्या नहीं प्रमाण है यह) विचार पीछे होगा, पहले वेद विचार करना चाहिये। (समीक्षक) वेद विचारको जव प्रतिवादी प्रामाण्य विचारके अधीन ही मानता है तव प्रथम प्रामाण्य विचार ही आवश्यक था, वस्तुगत्या प्रमाण न देनेसे स्वामोजीका पराजय तो हो गया और शास्त्रार्थ भी प्रायः समाप्त समझना चाहिए लेकिन प्रतिवादी पं० ताराचरणजी स्वामीजीको सर्वथा मौन करानेके लिये फिर उत्तर देते हुए निग्रह स्थानमें लाते हैं।

ताराचरण—कैसा वेद विचार करना चाहते हो, क्या वेद नित्य या अनित्य यह अथवा वेद पौरुषेय है या अपौरुषेय अर्थात् वेद पुरुष प्रणीत है या स्वतः अनादिकालसे परम्परा प्राप्त है, यह ?

दयानन्द—पाषाणादि प्रतिमा पूजन वेदमें लिखा है या नहीं यह विचार करना चाहते हैं।

दयानन्दः—वेदातिरिक्तानां न प्रामाण्यम्।

ताराचरणः—वेदे क्व लिखितम् अन्येषां नास्ति प्रामाण्यम्?

दयानन्दः—वेदविरुद्धस्य नास्ति प्रामाण्यम्।

ताराचरणः—वेदविरुद्धः कः?

दयानन्दः—यो वेदे नास्ति।

ताराचरण—हम लोगोंको जैसे वेद प्रमाण है वैसे ही स्मृति, इतिहास, पुराण, इत्यादिक भी प्रमाण हैं। पुराणादिकोंमें प्रतिमा पूजनका विशेष रूपसे वर्णन है और जब हम लोगोंको पुराणादिक वेदके समान (बराबर) प्रमाण हैं तब प्रतिमा पूजन सिद्ध हो गया।

दयानन्द—वेदसे अतिरिक्त प्रमाण नहीं है, अर्थात् केवल वेद ही प्रमाण हैं स्मृति इतिहास पुराणादिक कुछ भी प्रमाण नहीं हैं।

ताराचरण—वेदमें कहाँ पर लिखा है कि स्मृति, इतिहास और पुराणादिकोंको प्रमाण नहीं मानना (समीक्षक) पं० ताराचरण जी स्वामीजीको फिर निग्रहस्थान पर ले आये। यदि स्वामीजी वेदका कोई मन्त्र नहीं दिखा सके तो फ़िर दुबारा पराजय होगा। अस्तु, स्वामीजी कहाँसे दिखावें, जब वेदमें इस आशयका कोई मन्त्र नहीं है तो क्या करें! अब अपनी दूसरी दफाकी हारको छिपाते हुए फिर स्वामीजी बोले।

दयानन्द—वेद विरुद्ध प्रमाण नहीं है।

ताराचरण—वेद विरुद्ध क्या है? अर्थात् स्मृति, इतिहास, पुराणादिक तो वेद विरुद्ध है ही नहीं फिर तुम वेद विरुद्ध किसको कहते हो?

दयानन्द—जो वेदमें नहीं है। (समीक्षक) क्या स्वामीजी, वेदसे अतिरिक्त और वेद विरुद्ध और वेदमें नहीं, इन तीनों नञर्थोंको

तारा॰चरणः—इदं किं वेदोक्तं, अथवा भवत्कथितम् ?

दयानन्दः—त्वत्प्रश्नोत्तरं पश्चाद्दास्यामः प्रतिमापूजनं वेदे लिखितं नवेत्येका वक्तव्या ?

एक ही समझते हैं, जो कि एक साधारण लड़का भी समझता है कि 'नहीं' अभाव रूपसे और विरुद्ध शब्दार्थसे वड़ा ही भेद है। अस्तु, ऐसी विद्वानोंकी सभामें स्वामीजीके ऐसे वाक्य लोगोंको आश्चर्यसे मालूम देते होंगे। अस्तु, प्रकृतको देखिये।

ताराचरण—तो क्या यह (जो वेदमें नहीं है, वह प्रमाण नहीं है) आपका प्रतिज्ञावाक्य है अथवा वेदमें लिखा है ? अर्थात् यदि प्रतिज्ञा वाक्य है तो हेतु इस प्रतिज्ञाके लिये कहिये और यदि वेदमें लिखा है तो मन्त्र बोलिये।

दयानन्द—तुमारे प्रश्नका उत्तर पीछे देंगे, पहिले यह कहिये कि प्रतिमा पूजन वेदमें लिखा है या नहीं ? (समीक्षक) जब प्रतिवादी स्मृति पुराण इत्यादिकों को वेदके वरावर ही प्रमाण मानता है और वादी स्वामीजी खुद पुराणोंमें प्रतिमा पूजन मानते हैं तो प्रतिमा पूजन करना सिद्ध हो गया और स्वामीजीको पुराणोंके प्रमाण न माननेका कोई हेतु देना चाहिये था। उसके लिये स्वामीजी कहते हैं कि इसका उत्तर पीछे देंगे तो सोचना चाहिये कि प्रतिवादी (पं० ताराचरणजी) जब प्रतिमा पूजन करना पुराणोंके प्रमाण माननेसे सिद्ध कर चुके और स्वामीजीको पुराण न माननेका प्रमाण देना गले आपतित हो गया तब स्वामीजी "पश्चाद्दास्यामः" कहने लगे परन्तु वहाँ पर साक्षी रूपसे बैठे परम विद्वान् वालशास्त्रीजी से स्वामीजीके वारंवार पश्चाद्दास्यामः २ यह प्रतिज्ञा वाक्य सुनकर न रहा गया और बोले।

बालशास्त्री—(स्वस्वरूपं प्रकाशयितुमिच्छन्) वेदानुक्तत्वेनाप्रामाण्यमुक्तं तत्र को हेतुः स एव आदौ विचार्यः।

दयानन्दः—(वेदे) प्रतिमापूजनं (न) भवेत् अन्यत्र विचारः अतोवेदे अस्ति नास्ति वा इति विचारः पुरस्तात् कर्तव्यः, श्रुतिस्मृतिप्रभृतीनां सर्वेषामेव मूलं वेदः।

ताराचरणः—सर्वेषां वेदमूलकत्वे प्रामाण्योद्भावनं कर्तव्यम्।

दयानन्दः—मनुकात्यायनमहाभारतादिकमेव प्रमाणम्।

बालशास्त्री—जो वेदमें नहीं कहा गया है वह प्रमाण नहीं है इसका क्या हेतु? इसीका प्रमाण पहिले आपको देना चाहिये।

दयानन्द—वेदके मुताबिक प्रतिमा पूजन सही है या नहीं (जायज या नाजायज)? यह दूसरी बात है, प्रथम आप यह कहिये कि प्रतिमा पूजन वेदमें लिखा है या नहीं क्योंकि श्रुतिस्मृति इत्यादिक सभीका मूल वेद है।

ताराचरण—सभीका वेद मूल है इसमें प्रमाण कहिये! (समीक्षक) दयानन्द स्वामीजी समझते थे कि जैसे व्याख्यान (लेक्चर) में जो कुछ मनमें आया वह कह देते थे वैसे ही यहाँ विद्वानोंकी सभामें भी हमारी चल जायगी लेकिन यहाँ तो बिना प्रमाणके ये विद्वान् लोग बोलने नहीं देते, यह सोच समझकर स्वामी जी जब श्रुति प्रमाणसे वेद मूलक श्रुतिस्मृत्यादिकोंको सिद्ध न कर सके तब मनु, कात्यायन, महाभारतकी शरण ली।

दयानन्द—मनुस्मृति, कात्यायन ऋषिके वचन, और महाभारत अर्थात् व्यासजीके वचन सबका मूल वेद है इसमें प्रमाण है। (समीक्षक) जब व्यासजीके वचनों (महाभारतको प्रमाण मान लिया और पुराण व्यासजीके बनाये हुए हैं तब पुराणोंके माननेमें

ताराचरणः—तत्र तत्रैवान्येषामप्यस्ति प्रामाण्यम्।

दयानन्दः—किं वृथा वाग्वितण्डया यथा मन्त्रादीनां मीमांसावेदान्तादिसूत्राणां च सर्वेषामस्ति मूलं वेदः तथा प्रतिमापूजनस्यापि मूलं वेदो दर्शनीयः।

विशुद्धानन्द स्वामी—अहो किं वारंवारमेवं ब्रूषे वेदान्तादिसूत्राणां सर्वेषामस्ति मूलं वेदः 'रचनानुपपत्तेश्च नानुमानं प्रमाणम्' इत्यस्य मूलीभूतः को वेद इति वक्तव्यम्?

दयानन्दः—कोऽपि वदिष्यति अस्याक्षरस्य प्रमाणं देयम् तत्र किम्?

क्या सन्देह रहा? यह स्वामीजीका चौथा पराजय है।

ताराचरण—उन्हीं २ जगहों पर, औरोंका भी, अर्थात् प्रतिमापूजन, श्राद्ध, तर्पण, सदाचारादिकोंका भी प्रमाण है।

दयानन्द—व्यर्थ वितण्डावादसे क्या फायदा, जैसे मन्त्र, मीमांसा वेदान्तादिकसूत्रोंका मूल (बुनियाद) वेद है उसी तरह प्रतिमा पूजन का भी कोई मूलीभूत (बुनियाद स्वरूप) वेद कहिये।

विशुद्धानन्द स्वामी—क्या वारम्वार कहते हो कि वेदान्त सूत्रोंका मूल वेद है २ "रचनानुपपत्तेश्चनानुमानं प्रमाणम्" इसका मूल क्या वेद है, कहिये? (समीक्षक) इसका भी उत्तर दयानन्दजी न दे सके यह पाँचवाँ पराजय हुआ। अब स्वामीजी घबड़ाकर अपने ऊपरसे उत्तर देनेकी बलाको टालनेके लिये कहते हैं।

दयानन्द—कोई आकर कहे कि इस अक्षरका प्रमाण दो तो क्या मैं उसका भी प्रमाण दूँगा?

वालशास्त्री—सर्वेषामेव देयम् अत्रैव प्रतिज्ञानात्।

दयानन्दः—सर्वे वेदा नहि मे कण्ठस्थाः (सभ्या हसन्ति)

विशुद्धानन्दः—(संतुष्टः गर्जन्) तत्किमेवमभिलपसे।

दयानन्दः --(क्रुद्धः विशुद्धानन्द सम्मुखं प्रत्युपविश्य) तवास्ति किं सर्वमुपस्थितम्? धर्मस्य किं लक्षणम्? वद।

विशुद्धानन्दः—चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः इत्यादि सविस्तरम्।

वालशास्त्री—आप सभीको कहते हैं कि 'इसका प्रमाण देंगे" २ लेकिन किसीका भी तो प्रमाण दीजिये! या सभी प्रमाणोंके लिये "दास्यामि" २ (देंगे २) कह कर ही टाल रहे हैं। (समीक्षक) बालशास्त्रीजीकी यह झाड़ स्वामीजीसे न सही गई, तब ठीक अपनी हारको अपने मुँहसे कबूल करते हुए बोले।

दयानन्द—मुझे सब वेद याद नहीं हैं। (समीक्षक) कहिये क्या अब भी स्वामीजीके पराजय होनेमें कुछ कसर बाकी है? यह छठा 'पराजय' जैसे मल्लयुद्ध (कुश्ती) में चारों चित्त गिरै और पीठ लगै वैसा ही हुआ क्योंकि स्वामीजीने मान लिया कि मुझे वेद याद नहीं हैं।

विशुद्धानन्द—(बड़े खुश गर्जते हुए बोले) तब क्या इसी तरह शास्त्रार्थ करना चाहते हो? अर्थात् जब तुमको कुछ याद है ही नहीं तो फिर क्या शास्त्रार्थ करोगे?

दयानन्द—(क्रोधमें आकर विशुद्धानन्द स्वामीजीके सामने बैठकर बोले) क्या तुमको सब याद है? धर्मका लक्षण कहो अर्थात् धर्म किसको कहते हैं कहिये।

विशुद्धानन्द—वेदविहित स्वर्गादि फलसाधक कर्मका नाम धर्म है, अर्थात् स्वर्गादि प्राप्तिके लिये जिन कामोंके लिये वेद इजाजत

दयानन्दः—(वारयन्निव) लक्षणम् एकं बहु वा ।

विशुद्धानन्दः—लक्षणम् एकम्, प्रमाणानि बहूनि ।

दयानन्दः—(हसति) हो हो लक्षणम् एकम्, दश लक्षणानि

धृतिः क्षमादमोऽस्तेयः, शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ।

ताराचरणः—एते तु अनुमापकहेतवः नतु लक्षणानि ।

दयानन्दः—(ताराचरणसम्मुखं प्रत्युपविश्य) किमनर्थं गर्जसे अधर्मस्य लक्षणं वद ।

ताराचरणः—दुरदृष्टजनकत्वमधर्मत्वम् ।

देता है उन कामोंको धर्म कहते हैं। इसकी व्याख्या विशुद्धानन्द जी ने बीस मिनट तक करी।

दयानन्द—(रोकनेके इरादेसे) धर्मका लक्षण एक, या बहुत ?

विशुद्धानन्द—लक्षण एक है, प्रमाण बहुतसे हैं।

दयानन्द—(हँसकर) देखो आप एक ही लक्षण कहते हैं, धृतिः क्षमा० श्लोक पढ़कर कहा कि धर्मके दश लक्षण हैं।

ताराचरण—ये धर्मके अनुमान कराने वाले हैं, लक्षण नहीं हैं, अर्थात् धैर्यसे इतना मालूम हो सकता है कि यह धर्म करने लायक है। (समीक्षक) दयानन्दजीके प्रश्नका उत्तर स्वामी विशुद्धानन्द-जीने खूब विस्तार पूर्वक और बहुत ही ठीक दिया, सब सभासद समझ गए होंगे कि यह दयानन्दजीका सातवाँ पराजय हुआ। अब स्वामीजी समझ गए कि हम विशुद्धानन्दजीके सामने नहीं बोल सकते हैं इससे फिर ताराचरणजीके सामने होकर बोले।

दयानन्द—अधर्मका क्या लक्षण है ? कहो !

दयानन्दः—(अग्राह्यभावेन) किं त्वया कोलाहलेन (विशुद्धानन्द सम्मुखं प्रत्युपविश्य) त्वं वद स्वामिन् धर्मे का श्रुतिः?

विशुद्धानन्दः—अग्निहोत्रं जुहोति इत्येवमादिः।

दयानन्दः—(उपसंहरन्निव) किं प्रयोजनमप्रकृतविचारेण वेदे

ताराचरण—जो दुरदृष्ट (नरकादिक दुःखों) का पैदा करने वाला, वह अधर्म कहलाता है, इस उत्तरसे दयानन्दजी घवड़ा गये क्योंकि जिससे प्रश्न करते हैं वह ऐसा उत्तर देता है कि जरा भी कोटि कल्पना नहीं चलती हैं। अब इस आठवें पराजयके बाद ताराचरणजीसे घवड़ा कर बोले।

दयानन्द—तुमारे साथ कोलाहल (हल्ला) करनेसे क्या? (विशुद्धानन्दके सामने बैठकर) स्वामीजी! आप कहिये कि धर्मके माननेमें क्या वेद है अर्थात् किस श्रुतिके आधार पर धर्मको मानते हैं?

विशुद्धानन्द—'अग्निहोत्रं जुहोति' इस श्रुतिको कहकर इसकी व्याख्या बहुत देर तक की। (समीक्षक) अब दयानन्दजीको मालूम हो गया होगा कि हमें लोग क्या कहेंगे क्योंकि जो कुछ हम पूछते हैं उसका उत्तर तो ये लोग तुरत और विस्तार पूर्वक देते हैं पर हमने पुराणोंके प्रमाण न होनेमें अभी तक कुछ भी उत्तर न दिया और प्रतिमा-पूजनके लिये ये लोग कोई वेदका प्रमाण तो नहीं देंगे क्योंकि पुराणोंका प्रमाण इन लोगोंने मुझे मना दिया है। पुराणोंमें प्रतिमा पूजन सैकड़ों जगह है और पुराणोंके न माननेके लिये न तो कोई युक्ति है और न कोई मन्त्र ही है, यह सोचकर खुद ही प्रतिमा पूजनके प्रमाणके लिये सामवेदके २६ वें ब्राह्मणका पंचम प्रपाठकके दशम खण्डका मन्त्रको स्मरण दिला कर बोले।

दयानन्द—अप्रकृत विचारसे क्या प्रयोजन? वेदमें कहीं पर

क्वापि प्रतिमाशब्दो नास्ति, यत्र चैकत्रसामवेदेऽस्ति[1] सपरं-दिवमन्वावर्तते यथा 'यदास्यायुक्तानि यानानि प्रवर्तन्ते देवता-यतनानि कम्पन्ते दैवतप्रतिमा हसन्ति रूदन्ति गायन्ति नृत्यन्ति स्फुटन्त्युन्मीलन्ति निमीलन्ति' इत्येवमादिः। तस्यापि ब्रह्म-लोकपरता।

प्रतिमा शब्द नहीं है और जो सामवेदमें एक जगह है वह पर दिव (ब्रह्मलोक) के विषय (वावत) का है, "यदास्यायुक्तानि" जब बिन जोती हुई अर्थात् बैलोंके बिना गाड़ी आपसे आप चलने लगे अथवा देवताओंकी प्रतिमा हँसती हैं, रोती हैं अर्थात् प्रतिमाकी आँखोंसे आपसे आप पानी आने लगे, देवताओंकी प्रतिमा गाने लगें और नाचने लगें और आँखें निकाल कर अर्थात् कड़ी निगाहसे देखने लगें, या आँखें मीचने लगें तब "इदं विष्णुर्विचक्रमे" इस मन्त्रसे खीरकी आहुति दे, यह शान्ति ब्रह्मलोकके विषयकी है। (समीक्षक) यह शान्ति ब्रह्मलोकके लिये है या इस लोकके लिये इस विषयको थोड़ी देरके लिये अलग रखिये। अब यहाँ यह देखना चाहिये कि आजकलके सामाजिक इस वेद वचनको जो कि स्वामी दयानन्दजीने प्रमाणके लिये खुद उपस्थित (पेश) किया उसको क्यों नहीं मानते? यदि मानते हैं तो मैं यह पूछता हूँ कि क्या बिना बैल वगैरहसे बिना जोती हुई गाड़ी आपसे आप चलने लगती है? क्या देवताकी प्रतिमा जिसको सामाजिक पत्थर मान रहे हैं वह हँसने भी लगे और रोने भी लगे, क्या सामाजिक भाईजी। आपके घरमें चक्की सिल वगैरह भी हँसने लगती है? अस्तु, क्या प्रतिमा आपसेआप आँखें तरेरती है? और मीच भी लेती है? यह आप मानते हैं? अगर आप इस

१. सामवेदीय षड्विंश ब्राह्मणस्य पञ्चमप्रपाठकगत दशमः खण्डः

मन्त्रको सही मानते हैं जो कि स्वामी दयानन्दजीने खुद सही माना है तो यह मानना पड़ेगा कि प्रतिमा सजीव है, प्रतिमामें सर्वव्यापक परमेश्वरकी शक्ति (रूप) रहती है तभी हँसना रोना वगैरह यह सब हो सकता है। हाँ! इतना आप पूछ सकते हैं कि ये बातें प्रतिमामें क्यों होती हैं, इसका उत्तर उसी सामवेदमें देखिये। जब कोई घोर उपद्रव देशमें होनेवाला होता है तब ये बातें होती हैं, उन्हीं की शान्तिके लिये वहाँ पर लिखा है कि "इदं विष्णुर्विचक्रमे" इस मन्त्रसे आहुति देय।

सामाजिक! आपही कहिये गाड़ी कैसे विना जोती हुई चलती है, प्रतिमामें हँसना वगैरह कैसे होता है?

(समीक्षक) सर्वव्यापक परमेश्वरकी शक्तिके सामने विना जोती हुई गाड़ीका चलना साधारण बात है। वह अपनी शक्तिसे लोगों को सचेत करनेके लिये भावी (होनेवालें) उपद्रवके जनानेके लिये विना जोती हुई गाड़ी चलवाता है और प्रतिमाके हँसनेसे तो खुद परमेश्वरकी शक्ति भावी उपद्रवकी सूचना देती है। निदान, हम मूर्तिको तब तक पत्थर मानते हैं जब तक प्रतिष्ठा नहीं हुई और वैदिक विधिसे उस मूर्तिमें उन वैदिक मन्त्रोंसे जब आवाहन किया गया तब उसमें परमेश्वरकी शक्ति स्थूल रूपसे आगई इसीसे उसमें पत्थर भाव नहीं होता किन्तु यह परमेश्वर है यही भाव पैदा हो जाता है। देखो, सूक्ष्मरूपसे अग्नि सब जगह है लेकिन स्थूल रूपसे अंगार जो कि जला सकता है उसीको बोलते हैं। क्यों जी! आगके मँगाने पर कोई आदमी कपड़ा या तृण वगैरह लाकर क्यों नहीं कहता है कि लीजिये यह आग है क्योंकि सूक्ष्मरूपसे अग्नि तत्त्व हर एक पदार्थ में है और उस कपड़े या तृण वगैरह में भी है लेकिन स्थूल आग जो कि जला सकती है उसीको ही आग कहते हैं। ठीक इसी तरहसे परमेश्वरकी शक्तिको समझो कि सूक्ष्मरूपसे परमेश्वरकी शक्ति सब

ताराचरणः—तत्र को हेतुः ?

दयानन्दः—(पूर्ववत् ताराचरण सम्मुखं प्रत्युपविश्य) पश्यतु तावत् प्रकरणम् (स्थिरः सन् दोधयति) स प्राचीं दिशमन्वावर्तते इत्यादिना, स उदीचींदिशमन्वावर्तते इत्यादिना, स प्रतीचींदिशमन्वावर्तते इत्यादिना, स पृथिवीमन्वावर्तते इत्यादिना च पञ्चभिः खण्डैः

जगह है लेकिन उन वैदिक मन्त्रोंके प्रभावसे स्थूल रूपसे उन-उन प्रतिमाओंमें ही है। जैसे सूक्ष्म अग्निसे हम रसोई वगैरह नहीं बना सकते हैं, इसी तरह सूक्ष्म शक्तिकी हम उपासना भी नहीं कर सकते, इससे यह निर्विवाद सिद्ध हुआ कि प्रतिमा पूजनके द्वारा (जरियेसे) ही परमेश्वरकी उपासना हो सकती है, इससे प्रतिमापूजन जरूर करना चाहिये।

सामाजिक—यह शान्ति ब्रह्मलोक विषयकी है ?

(समीक्षक) क्या ब्रह्मलोकमें ही प्रतिमा पूजन है ? क्या ब्रह्मलोकके लोग प्रतिमा द्वारा उपासना करें और इस लोकके नहीं इसमें कुछ प्रमाण है ? जो हो, यह तो अब आप मानते हैं कि प्रतिमापूजन वेदके प्रमाणोंसे सिद्ध है और उससे ही परमेश्वरकी उपासना होती है और उस प्रतिमामें रोना वगैरह ये बातें हो सकती हैं और प्रतिमामें परमेश्वरकी स्थूलरूपसे शक्ति रहती है। अब प्रकृतके तरफ देखिये, इस मन्त्रकी ब्रह्मलोकपरता है इस स्वामी दयानन्दजीके वाक्यका खण्डन करनेको ताराचरणजी बोले।

ताराचरण—इस मन्त्रकी ब्रह्मलोक-परता है इसमें क्या हेतु (वजह) है ?

दयानन्द—(ताराचरणजी के सामने बैठकर स्थिरभावसे बोले) प्रकरणको देखो "स प्राचीमित्यादि" वह विधि पूर्वदिशाके लिये, वह दक्षिण

पृथिव्यां यान्यद्भुतानि भवितुं युज्यन्ते तेषां शान्तिस्तत्रत्यैरेवैवं कर्तव्येति विधाय, 'स दिवमन्वावर्तते इत्यादिना द्युलोके यान्यद्भुतानि स्युस्तेषां शान्तिस्तत्रत्यैरेवं कर्तव्येति विधाय, स परं दिवमन्वावर्तते इत्यादिना तु ब्रह्मलोके यान्यद्भुतानि भव्यानि तेषां शान्तिस्तत्रत्यैरेवैवं कर्तव्येति विद्यते। तथा च यथा मनुष्यलोके सन्ति मनुष्यायतनानि अस्ति च तत्कम्पनसम्भवः तथा ब्रह्मलोके सन्त्येव देवतायतनानि अस्ति

दिशाके लिये, वह उत्तर दिशाके लिये, वह पश्चिम दिशाके लिये और वह पृथिवीके लिये इत्यादिक पाँच खण्डोंसे पृथिवीमें जो अद्भुत (आश्चर्यकारी बातें) हों उनकी शान्ति पृथिवीके लोग करें। इसी तरह स्वर्गलोकके उपद्रवोंकी शान्ति स्वर्गलोकके मनुष्य करें और ब्रह्मलोकके उपद्रवोंकी शान्ति ब्रह्मलोकके मनुष्य करें। जैसे यहाँ मनुष्य लोकमें मनुष्योंके मकान हैं और मुमकिन है कि वे काँपने लगें, इसी तरहसे ब्रह्मलोकमें देवताओंके मकान हैं, और हो सकता है कि वे काँपने लगें तो उनकी शान्ति पूर्वोक्त रीतिसे करें इति। (समीक्षक) क्या सामाजिक भाई इस बातको मानेंगे कि केवल (सिर्फ) देवताओंके मकान काँपें और मनुष्योंके नहीं? क्या बिना जोती गाड़ीका चलना, देवताओंकी प्रतिमाओंका हँसना रोना, नाचना, इत्यादिक हो सकता है? अस्तु, देवताओंकी प्रतिमाओंका हँसना रोना इत्यादिक बातें जब इनके गुरु खुद मानते थे तब ये न मानें यह इनकी परम अज्ञता है। अब यहाँ केवल यह विचारना है कि क्या ब्रह्मलोकमें भी उपद्रव होते हैं, और उनकी शान्ति ब्रह्मलोकमें हो सकती है? जिस ब्रह्मको सत्य और ज्ञान स्वरूप मानते हैं, जहाँ केवल ब्रह्मके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है वहाँ शान्ति करनेवाले

च तत्कम्पनसम्भवः एवमेव प्रकरणमनुगृह्यते।

वालशास्त्री—भवदुक्तप्रकरणेन तु नहीदमागतम्, यद्ब्रह्मलोकपरतैव तस्याः श्रुतेः अपितु अन्वावर्तनं श्रूयते तस्य कोऽर्थः? (स्वयं व्याचष्टे) अनु आवर्तनम् अनुलक्ष्यीकृत्य आवर्तनम्, यदा ब्रह्मलोकादिषु अद्भुतानि लक्ष्यन्ते तदा तानि लक्ष्यीकृत्य एवं शान्तिः, एवं च ब्रह्मलोकीयापि शान्तिः मर्त्यैरेवानुष्ठेया।

दयानन्दः—कथमसर्वज्ञा वयं जानीयाम तत्र भूतमद्भुतम्?

वालशास्त्री—ग्रहादीनां गत्यादिकं यथा ज्ञायसे तथैव।

दयानन्दः—किमनेन कष्टकल्पनेन तत्रत्यैरेवैवं कर्तव्यमित्येव

कौन होंगे? इससे सिद्ध हुआ कि जो स्वामी दयानन्दजीने अर्थ किया वह ठीक नहीं है। इसी अर्थासंगतिको दिखाते हुए वालशास्त्रीजी बोले।

वालशास्त्री—आपके इस कहे हुए प्रकरणसे तो यह नहीं निकलता है कि ब्रह्मलोक विषयक ही यह श्रुति है किन्तु यहाँ पर अन्वावर्तन यह शब्द है इसका क्या अर्थ है? (खुद वालशास्त्रीजी व्याख्या करते हैं) "जब ब्रह्मलोकमें उपद्रव हों तो उनके लिये शान्ति करना चाहिये।" इससे यह सिद्ध हुआ कि ब्रह्मलोकके भी उपद्रवोंकी शान्ति इस लोकके मनुष्य ही करें।

दयानन्द—हम लोगोंको कैसे मालूम होगा कि वहाँ (ब्रह्मलोकमें) उपद्रव हुआ है?

वालशास्त्री—जैसे सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहणको हम जानते हैं उसी तरह होनेवाले उपद्रवोंको भी जान लेंगे।

दयानन्द—इस कष्ट कल्पनासे क्या लाभ? इससे यही क्यों न

सुलभम् ।

बालशास्त्री—तत्रानुष्ठातारः के भविष्यन्ति ?

दयानन्दः—स्वर्गादौ इन्द्रादयो देवाः सन्ति न वा ?

विशुद्धानन्दः—मन्त्रमयी देवता (महाराजभ्रूकुञ्चनम्) ।

दयानन्दः—कथमुपासना ?

मान लें कि ब्रह्मलोकके उपद्रवोंकी शान्ति ब्रह्मलोकके रहने वाले करेंगे ।

बालशास्त्री—वहाँ (ब्रह्मलोकमें) अनुष्ठान करनेवाले कौन होंगे ?

दयानन्द—स्वर्गादिकमें इन्द्रादिक देवता हैं कि नहीं अर्थात् उन देवताओंमेंसे कोई अध्वर्यु कोई उद्गाता और कोई होता, बन जायगा और वे ही शान्तिके लिये हवन कर लेंगे । (समीक्षक) अगर आपका कहा हुआ अर्थ मान लें तब भी इन्द्रादिक देवता केवल अपने ही लोककी शान्ति करेंगे न कि ब्रह्मलोक की, यही बालशास्त्रीजी का आशय है कि वहाँ (ब्रह्मलोकमें) शान्ति करनेवाले कौन होंगे, लेकिन स्वामी दयानन्दजी तो द्युलोक (स्वर्गलोक) की शान्ति करने वालोंको कहते हैं न कि ब्रह्मलोककी शान्ति करनेवालोंको; तो इससे यह स्वामीजी ने मान लिया कि ब्रह्मलोककी शान्ति मनुष्य ही करेंगे इससे यह सिद्ध हुआ कि ब्रह्मलोककी शान्तिके लिये जो बालशास्त्री जीने अर्थ किया वही युक्तिसंगत है । अस्तु स्वर्गलोककी भी शान्ति मनुष्य ही करेंगे इस प्रतिज्ञाको सिद्ध करनेके लिए इन्द्रादिक देवताओं के देह नहीं होती है किन्तु मन्त्रस्वरूप देवता होते हैं, इस दृढ़ मीमांसक सिद्धान्तको सूचित करते हुए स्वामी विशुद्धानन्दजी बोले ।

विशुद्धानन्द—मन्त्र स्वरूप देवता है, अर्थात् इन्द्रादिक देवताओं के जब देह ही नहीं है किन्तु मन्त्ररूप ही देह है तब स्वतः (आपही) मनुष्य ही शान्ति करेंगे ।

विशुद्धानन्दः—प्रतीकोपासना, यथा शालग्रामादौ।

दयानन्दः—क्व वेदे लिखितम्?

विशुद्धानन्दः—एकस्य हि सामवेदस्यैव सहस्रशाखाः भवता सर्वा एव दृष्टाः?

दयानन्दः—शृणु शृणु! सहस्रवर्त्मा सामवेदः, सहस्रमार्गक इति तस्यार्थः, संहिता तु सर्वत्र शाखासु एका एव।

विशुद्धानन्दः—मार्ग इति चेत् कठेन प्रोक्ता कठीति कथम्?

दयानन्दः—तस्य तन्मार्गप्रवर्तकत्वात्।

दयानन्द—उपासना (इन्द्रादिक देवताओंकी पूजा) किस तरह से हो सकेगी?

विशुद्धानन्द—अध्यासिक, (मानकर-अर्थात् फर्जीतौरसे) उपासना होगी, जैसे शालग्रामशिलामें विष्णुकी उपासना।

दयानन्द—वेदमें कहाँ लिखा है, अर्थात् शालग्रामशिलामें विष्णु की उपासना को प्रतीकोपासना कहते हैं यह वेदमें कहाँ लिखा है?

विशुद्धानन्द—अकेले सामवेदके ही हजार शाखा हैं क्या तुमने सब देख लीं?

दयानन्द—सुनो २! "सहस्रवर्त्मा" इसका यह अर्थ है कि सामवेदकी हजार रास्ता है अर्थात् हजार तर्जसे सामवेद पढ़ा जाता है और संहिता सब शाखाओंमें एक ही है।

विशुद्धानन्दः—यदि "सहस्रवर्त्मा सामवेदः" इसका, हजार शाखा वाला सामवेद है अर्थात् सामवेदकी हजार शाखा हैं यह अर्थ नहीं मानोगे तो कठ ऋषिसे कही गयी जो शाखा वह "कठी" कहलाती है, तुम्हारे अर्थसे कठी शाखाकी प्रसिद्धि कैसे होगी?

दयानन्द—कठ ऋषि उस मार्गके चलाने वाले हैं, इससे वह कठी

महाराजः—(अमात्यमण्डलाभिमुखः) यय्सा भो कभी होता है ?

विशुद्धानन्दः— वेदा अपौरुषेयास्तत्र पुनः के प्रवर्तयितारः ?

दयानन्दः—वेदाः परमेश्वरे एव तिष्ठन्ति, परमेश्वर एव प्रवर्तकः, तत ऋष्यादयः।

विशुद्धानन्दः—किं लक्षणके ईश्वरे तिष्ठन्ति वेदाः ? न्यायनयसिद्धे नित्यज्ञानादिविशिष्टे ईश्वरे, पातञ्जलनयसिद्धे क्लेशकर्म-

---

शाखा कहलाती है। (समीक्षक) जब संहिता सब शाखाओंकी दयानन्दजी एक ही मानते हैं तब यह कठी शाखा है "यह कौथुमी शाखा है" इत्यादि व्यवहार पृथक् २ शाखाओंका नहीं हो सकेगा क्योंकि पढ़नेकी तर्जसे शाखाका नाम नहीं हो सकता। अस्तु, महाराज (काशीराज) दीवान (मन्त्री) वगैरोंके तरफ देखकर बोले यय् सा भी कभी होता है अर्थात् मार्गके प्रवर्तक होनेसे उनके नामसे वेदकी शाखा प्रसिद्ध हो, यह नहीं हो सकता है।

विशुद्धानन्द—वेद अपौरूषेय हैं, अर्थात् अनादि कालसे संसारके साथ ही वेद विद्यमान हैं, इनका प्रवर्तक कोई नहीं है, "वेद, कर्म, और संसार" इनको मीमांसक नित्य अपौरूपेय मानते हैं यही स्वामी विशुद्धानन्दजी का पक्ष है।

दयानन्द—वेद परमेश्वरमें रहते हैं, परमेश्वर ही वेदोंका प्रवर्तक है, उसके बाद ऋष्यादिक प्रवर्तक हैं।

विशुद्धानन्द—कैसे परमेश्वरमें वेद रहते हैं, क्या नैयायिकोंके सिद्धान्तानुसार नित्य ज्ञानादि विशिष्ट परमेश्वरमें, अथवा पातंजल (योग) दर्शनके अनुसार दुःखादि कर्मविपाकादिकोंसे रहित पुरुष-विशेषमें, अथवा वेदान्त दर्शनके अनुसार (मुताबिक) सच्चिदानन्द स्वरूपमें वेद रहते हैं, तात्पर्य यह है कि सांख्य और

विपाकाशयैरपरामृष्टे पुरुषविशेषे, वेदान्तानुयायिनये सच्चिदानन्दस्वरूपे वा ?

दयानन्दः—एवं भवन्नये ईश्वरा बहवः सन्ति ।

विशुद्धानन्दः—सन्त्येव मतभेदे ।

दयानन्दः—लक्षणे भेदः ईश्वरे वा ? ईश्वरज्ञानमति कठिनम् ।

मीमांसक परमेश्वरको नहीं मानते हैं। मीमांसक कर्म ही को मुख्य मानते हैं, न्याय और वैशेषिकका इसमें (परमेश्वरके विषयमें) कुछ भेद नहीं है तो किस दर्शनके अनुसार कैसे परमेश्वरमें वेदोंकी स्थिति मानते हो ?

दयानन्द—इससे तो यह सिद्ध होता है कि आपके सिद्धान्तसे परमेश्वर बहुत हैं।

विशुद्धानन्द—हमारे सिद्धान्तसे क्या, जिस दर्शनका जो सिद्धान्त है उस दर्शनके मुताबिक उस तरहका वे (आचार्य) परमेश्वरको मानते हैं।

दयानन्द—लक्षणमें भेद है या ईश्वरमें ? ईश्वरका जानना बड़ा कठिन है। (समीक्षक) दयानन्दजीको यह भी नहीं मालूम है कि लक्षणका क्या प्रयोजन, अर्थात् लक्षणमें क्या सामर्थ्य है, देखो—"व्यावृत्तिर्व्यवहारो वा लक्षणस्य प्रयोजनम्" जब लक्षण भिन्न है तब वस्तु स्वतः भिन्न है। जिस दर्शन (शास्त्र) कारका जो सिद्धान्त है उसके यहाँ उसी तरहकी वस्तु और वस्तुके अनुरूप लक्षण होते हैं, जैसे वेदान्तानुसार सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर है और वही परमेश्वरको अर्थात् सर्व-शक्तिमान्को सांख्य दर्शनवाले क्लेश-कर्म-विपाकादि रहित पुरुष-विशेष मानते हैं तो लक्षणके भेदसे वस्तु अवश्य भिन्न होगी। अस्तु, प्रकृतको देखिये।

विशुद्धानन्दः—सुलभमिति केनोक्तम्, कस्मिन् स्वरूपे तिष्ठन्ति-वेदा इति प्रकृतं वद।

दयानन्दः—सच्चिदानन्द स्वरूपे।

विशुद्धानन्दः—तत्र न किमपि, तत्र न किमपि, अस्तु वा, केन सम्बन्धेनेति वद।

दयानन्दः—कार्यकारणसम्बन्धेन।

विशुद्धानन्दः—(उच्चैः) स सम्बन्धो न वृत्तिनियामकः अन्यथा धर्मे तिष्ठतु सुखम्।

विशुद्धानन्द—परमेश्वरका जानना सुलभ है यह किसने कहा? लेकिन किस तरहके परमेश्वरमें वेद रहते हैं यह कहो क्योंकि इसीका प्रकृत विचार हो रहा है।

दयानन्द—सच्चिदानन्द स्वरूपमें वेद रहते हैं।

विशुद्धानन्द—सच्चिदानन्द स्वरूपमें कुछ भी नहीं रहता है अर्थात् सत्-चित्-आनन्द स्वरूप निराकार जब वह परमेश्वर है तब उसमें वेदोंका रहना कैसे संभवित हो सकता है? अस्तु, (खैर, फर्जीतौरसे) मान भी लें तो कहिये किस सम्बन्धसे परमेश्वरमें वेद रहते हैं?

दयानन्द—कार्यकारण सम्बन्धसे वेद परमेश्वरमें रहते हैं।

विशुद्धानन्द—कार्यकारण सम्बन्ध इस बातको सिद्ध नहीं कर सकता है कि वेद परमेश्वरमें रहते हैं क्योंकि कार्य निश्चयसे कारण में रहता है यह नियम नहीं है। यदि मान लें कि कार्य-कारण सम्बन्ध वृत्तिनियामक होगा तो धर्ममें सुख ठहरेगा न कि आत्मा या मनमें क्योंकि धर्मकारण है, सुख कार्य है, और कारणमें कार्यका ठहरना तुम मानते हो जैसे परमेश्वर कारणमें वेदरूप कार्य ठहरता है वैसे ही धर्मरूप कारणमें सुखरूप कार्य ठहरेगा, यह आपत्ति

दयानन्दः—तत्र न किमपि तिष्ठति कार्यकारण सम्बन्धश्च न वृत्तिनियामक इति चेत् आकाशः केन सम्बन्धेन क्व तिष्ठति इति वद ।

विशुद्धानन्दः—स एव ईश्वरः ?

दयानन्दः—(उपहसन्) हेस-ए व ईश्वरः ।

कार्यकारण सम्बन्धसे वेदोंकी उत्पत्ति माननेमें पड़ेगी जो कि अनुभव विरुद्ध है और तुमको भी अभिमत नहीं है। (समीक्षक) इस युक्तिसे स्वामी दयानन्दजी कैसे निरूत्तर हुए कि लोग देखकर चकित हो गये ।

दयानन्द—यदि सच्चिदानन्द स्वरूपमें कुछ नहीं रहता और कार्य-कारण सम्बन्ध वृत्तिनियामक नहीं है तो आकाश किस सम्बन्धसे कहाँ रहता है ? यह कहो ।

विशुद्धानन्द—क्या आकाशको ही ईश्वर मानते हो ? अर्थात् अप्रकृत वस्तुका विचार क्यों करते हो ? यदि आकाशको ईश्वर मानते हो तब हम प्रकृत समझकर उत्तर दें और आकाश नित्य है उसके विषयमें आक्षेप करना व्यर्थ है यही स्वामी विशुद्धानन्दजी का तात्पर्य है ।

दयानन्द—(मसखरीके साथ विरायकर) 'हेस ए-व-ई-श्वरः कहकर नकल की (समीक्षक) आश्चर्य है कि स्वामी दयानन्द ऐसे महानुभाव, ऐसे सुयोग्य विद्वानों और महाराजाओंकी सभामें यह कार्य करें, अथवा मैं समझता हूँ स्वामी दयानन्दजी के आँसू पराजयके कारण आने लगे होंगे क्योंकि सर्वथा दयानन्दजी को निरूत्तर स्वामी विशुद्धानन्दजीने कर दिया। दयानन्दजी तो बड़े आडम्बर में थे कि हम काशीस्थ विद्वानोंके सामने भी कुछ बोलेंगे लेकिन यहाँ तो

ताराचरणः—अस्य मुखव्यंग्यस्य कोऽर्थः ?

दयानन्दः—(क्रुद्धः) कोऽर्थः कोऽर्थः, अर्थसंज्ञा कस्य ?

ताराचरणः—विषयमात्रस्य।

दयानन्दः—अलमनर्थविचारेण तत्प्रकरणं वद।

विशुद्धानन्दः—(पृष्ठे दत्तवामहस्तः) अरे बाबा ! तूँ अभी कुछ पढ़ा नहीं, काशीमें कुछ दिन पढ़ (हँसकर)—

जो कुछ कहना चाहते हैं उसीमें 'टाँय टाँयफिस' हो जाते हैं। अस्तु, अब अपने आँसुओंके छिपानेके लिए लोगोंको नकल दिखाकर हँसाया जिसमें लोगोंको मालूम हो कि हँसीके आँसू हैं, पराजयके, शोकके नहीं। अस्तु, स्वामी दयानन्दजीने अपने आँसुओंको तो छिपा लिया लेकिन मुँहके फीकेपनको कहाँ छिपा सकते हैं।

ताराचरण—इस मुँहके विरावनेका क्या अर्थ है ?

दयानन्द—(क्रुद्धहोकर) अर्थ किसको कहते हैं ? अर्थात् यहाँ पर अर्थ किसका नाम है ?

ताराचरण—जो कुछ प्रकरणमें हो, उसको अर्थ कहते हैं। (समीक्षक) पं० ताराचरणजी के सामने स्वामी दयानन्दजी कुछ भी नहीं बोल सकते हैं। एक ही उत्तरमें स्वामीजी चुप हो जाते हैं। मालूम होता है कि स्वामीजी तर्कशास्त्रका लेशमात्र भी नहीं जानते हैं। अस्तु।

दयानन्द—अप्रकृत (फजूल) विचारोंसे कुछ फायदा नहीं, प्रकरणका विचार कीजिये।

विशुद्धानन्द—(पीठ पर बायाँ हाथ रखकर) अरे बाबा ! तू अभी कुछ पढ़ा नहीं, कुछ दिन पढ़। (समीक्षक) यह स्वामी विशुद्धानन्दजीने हिन्दीमें ही कहा है। अब लोग समझ गये होंगे कि स्वामी दयानन्दजीमें कितनी विद्वत्ता है। स्वामी दयानन्दजी जानते थे कि

घटं भित्वा पटं भित्वा कृत्वा गर्दभवाहनम्।
येन केन प्रकारेण प्रसिद्धः पुरुषो भवेत्॥

दयानन्दः—(हस्तं बलाद्दूरीकृत्य) भवता सर्वं पठितम्?

विशुद्धानन्दः (प्रहस्य)—सर्वम्।

दयानन्दः—(पुनः प्रत्युपविश्य) व्याकरणमपि?

विशुद्धानन्दः—तदपि।

जैसे लेक्चरबाजीसे हम अनभिज्ञ (मूर्ख) लोगोंमें अपना प्रभाव जमा लेते हैं उसी तरह विद्वानोंके सामने भी काम चल जायेगा। लेकिन यहाँ तो प्रमाण और तर्कोंसे स्वामीजी की बुद्धि गुम हो गयी। सच पूछिये तो स्वामीजीको ऐसे धुरन्धर प्रबल विद्वानोंके सामने आना ही अत्यन्त अनुचित था। वस्तुगत्या स्वामीजी का भी दोष नहीं है क्योंकि "न बुध्यते इत्यपि बुद्धिसाध्यम्" (यह मैं नहीं जानता हूँ, यह भी आदमी बुद्धिसे ही जान सकता है)। स्वामीजी यह नहीं जानते थे कि मुझे क्या आता है और क्या नहीं। उसीका यह फल है कि बारम्बार नीचा देखना पड़ता है। लेकिन स्वामीजीको इतने पर भी सन्तोष नहीं हुआ। वह समझते हैं कि जब तक बिलकुल चुप न हो जावैं तब तक पराजय नहीं हुआ। इसीसे फिर ढिठाईके साथ, जो स्वामी विशुद्धानन्दजीने पीठपर हाथ रक्खा था उसे अलग करके बोले।

दयानन्द—क्या तुमने सब पढ़ लिया?

विशुद्धानन्द—(हँसकर) हाँ, हमने सब पढ़ लिया।

दयानन्द—(फिर अच्छी तरहसे सम्हलकर बैठकर) व्याकरण भी पढ़ लिया?

विशुद्धानन्द—हाँ, व्याकरण भी पढ़ लिया।

दयानन्दः—(रक्तेक्षणः) कल्मसंज्ञा कस्य ? (गर्जन्) वद ! वद !

वालशास्त्री—कल्मसंज्ञा महाभाष्य एकत्र परिहासेन कथिता न सा प्रकृतसंज्ञा । अपिच प्रकृतविचारणे प्रवृत्तस्त्वं कथमप्रकृतं विचारयसि, पुराणादीनां वेदविरुद्धता कथं ? तदेवोद्भावय ।

दयानन्दः—(यथावदुपविश्य) शृणु शृणु ! म्लेच्छभाषाध्ययनादेः पुराणादौ निषेधोऽस्ति, वेदे क्वास्ति ?

वालशास्त्री—(सभ्यान् पश्यन् पठति) न म्लेच्छितवै नापभाषितवै इत्यादिः ।

दयानन्द—(लाल आँख करके) कल्मसंज्ञा किसकी है ? (वड़े जोरसे) कहो ! कहो !

वालशास्त्री—(जो कि साक्षी रूपसे वैठे थे वे वोले) महाभाष्यमें एक जगह कल्म नाम मसखरीका कहा है लेकिन वह प्रकृत संज्ञा नहीं है अर्थात् व्याकरणका नाम लेकर कल्मसंज्ञा पूछते हो ? व्याकरणसे जो कि शब्दोंकी सिद्धिका वतानेवाला (ग्रामर) है उससे और कल्म संज्ञासे क्या सम्बन्ध है ? कल्म संज्ञासे शब्द सिद्धिके लिए कुछ भी सहायता नहीं मिलती है। तुम प्रकृत विचारके लिए प्रवृत्त (करना चाहते) हो और अप्रकृत विचार क्यों करते हो ? पुराणादिक वेद विरुद्ध किस तरह हैं ? इसको सिद्ध कीजिये। क्योंकि इसीका इस समय विचार हो रहा है।

दयानन्द—(सम्हलके वैठकर) म्लेच्छ भाषा (फारसी) के पढ़नेका पुराणादिकोंमें निषेध है और वेदमें नहीं है। इससे पुराणादिक वेदके विरुद्ध प्रतिपादन करनेसे प्रमाण नहीं हैं।

वालशास्त्री—(सभासदोंके तरफ देखकर वेदका प्रमाण दिया कि) 'न म्लेच्छितवै, नापभाषितवै' अर्थात् म्लेच्छभाषाको न वोलै, और

दयानन्दः—मदभिमुखो वद अन्यथा नाहं श्रोष्यामि, इति वदन् नाऽसौ वेदः ।

विशुद्धानन्दः—यद्युह वा श्मशानं यच्छूद्रस्तस्माच्छूद्रसमीपे नाध्येतव्यमित्यादि ।

दयानन्दः—किमिदं संहिता उत ब्राह्मणादिकम् ? दर्शय !

अपशब्दको न कहै इत्यादि ।

दयानन्द—मेरे सामने कहो, नहीं तो मैं नहीं सुनूँगा । यह वेद नहीं है । (समीक्षक) क्या सचमुच स्वामीजीकी बिलकुल बुद्धि गायब हो गई ! क्या 'म्लेच्छितवै' यह प्रयोग वैदिक नहीं है तो क्या लौकिक प्रयोगोंमें भी तवै प्रत्यय होता है ! स्वामीजीने व्याकरण पर भी पानी फेर दिया । देखो ! छन्दसि इस सूत्रका अधिकार करके 'तुमर्थे' इस सूत्रसे तवै प्रत्यय होता है और यह तवै प्रत्यय जब वेद ही के प्रयोगोंमें होता है तब म्लेच्छितवै यह वेद नहीं है तो क्या है !

विशुद्धानन्द—शूद्र श्मशानके सदृश है इससे वेद शूद्रके समीप नहीं पढ़ना चाहिए अर्थात् जहाँ पर शूद्र हो वहाँ पर नहीं पढ़ना चाहिये । (समीक्षक) कहिये महाशयजी ! यह वेद है कि नहीं ? जो वेदमें कहा है वही पुराणोंमें है । यह दूसरी बात है कि सामवेदके थोड़ेसे पत्रे जो आपने देखे हैं उनमें नहीं है । इससे वेदमें न होना सिद्ध नहीं होता है । यदि किसी जन्मान्धको अपने देहका रूप न देख पड़े तो वह नीरूप नहीं होता है ।

दयानन्द—क्या यह संहिता भाग है अथवा ब्राह्मण भाग है ? देखाओ । (महाराज काशीराजजीके सामने होकर) कल रात्रिमें जो आपका आदमी आया था उससे मैंने कह दिया था कि महाराजजी

(महाराजाभिमुखः) गतरजन्यामागतेन राजपुरूषेण महाराजः पुस्तकाय विज्ञापितः, विचारसमये पुस्तकानि स्थाप्यानि इति।

से कह दीजियेगा कि शास्त्रार्थके समय वहाँ पुस्तकें रखा दें। (समीक्षक) क्या यह संहिता है अथवा ब्राह्मण ? इस दयानन्दजी के प्रश्नसे मालूम होता है कि स्वामीजीको ब्राह्मण भागके प्रमाण माननेमें कुछ सन्देह है। आश्चर्य है, स्वामीजीकी बुद्धिको, सहृदय सामाजिको ! आग्रह छोड़कर विचार करो कि मन्त्र भागका प्रभुत्व ब्राह्मण भागके प्रामाण्यके अधीन है। यदि ब्राह्मण भागको प्रमाण न मानोगे तो मन्त्र भाग पंगु, अन्धके सदृश कुछ कर ही नहीं सकता। जैसे हवनके समयमें अमुक मन्त्रके बाद अमुक मन्त्र पढ़ना यह ब्राह्मण भागसे जानते हो अथवा मन्त्र भागसे ? जब मन्त्र भागमें क्रम (सिलसिला) नहीं दिखाया गया है तो फिर किस मन्त्रके बाद कौन मन्त्र पढ़ना चाहिये यह कैसे जाना जा सकता है ?

दूसरे, मन्त्र पढ़कर अन्तमें स्वाहा कहकर हवन करना चाहिये यह ब्राह्मण भाग ही से ज्ञात हो सकता है न कि मन्त्र भागसे। अस्तु, सामाजिको ! क्षणमात्रके लिये आप आग्रह छोड़कर विचार करें। वेदोंका प्रयोजन यज्ञसिद्धि है यह स्वामीजीने भी "दुदोह यज्ञ सिद्ध्यर्थं" इस मनुवचनको प्रमाण देकर यज्ञ सिद्धि ही वेदोंका प्रयोजन माना है तो कहिये यज्ञ करनेका विधान ब्राह्मण भागमें है अथवा मन्त्र भागमें ? जब तक ब्राह्मण भाग यह आज्ञा नहीं देता है कि इस मन्त्रसे अमुक काम करो, इस मन्त्रसे अमुक काम करो; इस मन्त्रसे देवताके लिये हवन करो तब तक मन्त्र भाग पंगुके तरह ब्राह्मण भागके मुखको देखता है। ब्राह्मण भाग मन्त्र भागके ऊपर राजा है। जिस २ कार्यके लिये ब्राह्मण भाग आज्ञा देता है उस २ कार्यको मन्त्र भोग करता है। इसीसे सामाजिक भी गायत्रीसे शिखा

महाराजः—(नीचैः) पण्डितोंका कण्ठस्थ ही है।

देवदत्तः—(जनचतुष्टयव्यवहितो दण्डायमानः अत्युच्चैः किमभिलप्यसे वेदानां पुस्तकानि अत्र स्थाप्यानि, वेदानां पुस्तकानि अत्र स्थाप्यानि इति, कति वेदाः ?

बाँधना, प्राणायाम करना, गायत्री जपना इत्यादि अनेक कार्य करते हैं। यदि ब्राह्मण भाग प्रमाण न मानोगे तो गायत्री मन्त्रसे शिखा शब्दका नाम निशान भी न पाओगे, तो गायत्रीसे शिखा कैसे बाँधोगे ? इससे सिद्ध हुआ कि ब्राह्मण भाग प्रमाण है और ब्राह्मण भाग प्रमाणके अधीन मन्त्र भागका प्रामाण्य है। मुझे विश्वास है कि निष्पक्षपातसे निरीक्षण करते हुए सामाजिक ब्राह्मण भागके प्रामाण्य माननेमें अब संकोच न करेंगे। अस्तु, प्रकृतको देखिये।

महाराज—(पुस्तक माँगनेकी बात सुनकर महाराजका शिर नीचा हो गया। महाराज सोचने लगे इस अल्पज्ञ और पुस्तकोंके भरोसे पर शास्त्रार्थ करनेवालेको ऐसे धुरन्धर विद्वानोंके सामने क्यों बैठाया। अस्तु, महाराजने स्पष्ट कह भी दिया कि पण्डितोंका कण्ठस्थ ही है अर्थात् पण्डित पुस्तकोंको देख २ कर शास्त्रार्थ नहीं करते हैं। (समीक्षक) अब सभी लोग समझ गये कि यह तो ढोलमें पोल ही है। सब लोग स्वामीजीको उपेक्षा दृष्टि (गिरी निगाह) से देखने लगे। महाराज और सब राजकर्मचारियोंने तो जय पराजयका निर्णय कर ही लिया होगा लेकिन जबतक स्पष्ट रूपसे पराजय न हो जाय तब तक स्वामीजी हार गये यह कहना ठीक नहीं है लेकिन शास्त्रार्थके पर्यवसान (रिजल्ट)को देखाना चाहिये, प्रकृतमनुसरामः।

देवदत्त—(चार आदमियोंको साथ लिये हुए एक देवदत्त नामका पण्डित जोरसे बोला) क्या कहते हो वेदोंकी पुस्तकें रखना चाहिये, कितने वेद हैं कुछ पता भी है ?

दयानन्दः—(हसन्) मनुनैवोक्तम्—

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।

दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम्॥

देवदत्तः—(भर्त्सयन्निव) एकशतमध्वर्युशाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेदः एकविंशतिधाबाह्वृच्यम् नवधाऽथर्वणो वेदः वाकोवाक्यमितिहासः पुराणं वैद्यकमित्येतावान् शब्दस्य प्रयोगविषयः। तत्सर्वं पठितम्? एकस्य सामवेदस्यैव सहस्रशाखाः तासां द्वावेवात्र अन्याः सर्वा ब्रह्मलोके। (मुखभङ्ग्या हस्तप्रसारेण च तर्जयित्वा) विचाराय आगतोऽसि? पाषाणादिप्रतिमापूजनमशास्त्रीयं वाराणस्यामेवं कथयसि? न जानासि किमियं काशीपुरी। (सभ्या अनेके सहर्षा हसन्ति तं निवारयन्ति च)।

दयानन्द—(हँसते हुए) मनुने ही कहा है कि अग्नि वायु और सूर्यसे यज्ञसिद्धिके लिये ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद ये तीन वेद प्रकट हुए।

देवदत्त—(धमकानेकी तरह) सौ शाखा यजुर्वेदकी, हजार सामवेदकी एकीस ऋग्वेदकी, नव अथर्ववेदकी हैं, ब्राह्मण भाग, इतिहास, पुराण वैद्यक इतना शब्दके प्रयोगका विषय है तो क्या सब पढ़ लिया है? एक सामवेदकी ही हजार शाखा हैं, उनमेंसे दो ही शाखा यहाँ हैं, और सब ब्रह्मलोकमें हैं। शास्त्रार्थ करनेको आए हो! पाषाणादिकोंकी प्रतिमाओंका पूजन अशास्त्रीय है ऐसा कहते हो, क्या यह नहीं जानते हो कि यह काशीपुरी है, अर्थात् यहाँ बड़े २ दिग्विजयी विद्वान् व्यास, शंकराचार्य इत्यादिकोंने भी नीचा देखा है।

दयानन्दः—(सभयमूर्ध्वमुखस्तन्मुखं पश्यन्) अत्र किं तव बलं वर्तते ?

ताराचरणः—अस्ति शास्त्रे बलम् ।

दयानदः—यदस्ति शास्त्रं तदवलम्ब्य वद । अप्रत्यक्षं शास्त्रं पूर्वं स्थितमिति नाहं मन्ये ।

सभ्याः— किं किं मन्यसे ? तदेवोच्यताम् ।

दयानन्दः—ऋग्यजुः सामाथर्वेति चत्वारो वेदाः, आयुर्वेदो धनुर्वेदो गन्धर्ववेदोऽर्थवेद इति चत्वार उपवेदाः, शिक्षादयः षडङ्गाः, ईशादयो दश, श्वेताश्वतरकैवल्ये च द्वादश उपनिषदः, व्यास जैमिनि बोधायन कात्यायनादीनि सूत्राणि, मनुस्मृतिर्महाभारतरूपमितिहासः, वाल्मीकीय रूपं रामायणं चेति ।

विशुद्धानन्दः—(तदभिमुखं प्रत्युपविश्य) व्याख्यानानि ।

दयानन्द—(भयसे ऊपरको मुख करके पं० देवदत्तके तरफ देखते हुए बोले ' यहाँ तुमारा क्या बल है ?

ताराचरण—शास्त्रमें बल है ।

दयानन्द—जिस शास्त्रमें बल है उसीके अनुसार कहिये, पहिले अप्रत्यक्ष शास्त्र जो कुछ ये कहते थे वह मैं नहीं मानता हूँ ।

सभ्यलोग—क्या-क्या प्रमाण मानते हो वही कहिये ।

दयानन्द—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, ये चार वेद, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद, अर्थवेद, ये चार उपवेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष, निरुक्त और छन्द ये छ वेदाङ्ग, ईशावास्यादिक दश और श्वेताश्वतर, कैवल्य ये बारह उपनिषद्, व्यास जैमिनि बोधायन, कात्यायनादि सूत्र, मनुस्मृति, महाभारत रूप इतिहास, और वाल्मीकीय रामायण ये मुझे प्रमाण हैं ।

दयानन्दः—सनातनानि तान्यपि ग्राह्याणि ।

विशुद्धानन्दः—(हसन्) श्लोकाः

दयानन्दः—वेदाविरुद्धाश्चेत्तेऽपि ग्राह्याः । अपिच महाभारतादिष्वपि वेदव्याकरणशिष्टाचारविरुद्धस्य न प्रामाण्यम्, (प्रगर्ज्यपिष्टपेषणवत्) वचनानां केषामपि न प्रामाण्यम्, ।

माधवाचारी—(उच्चैः) सुनिये ! सुनिये ! जरा मेरी भी तो सुनिये ! तैत्तिरीयशाखामें है कि 'यदा गच्छत्पथिभिर्देवयानैरिष्टापूर्ते कृणुतादाविरस्मै' यहाँ पर पूर्त शब्द है कि 'वापीकूपत-

---

विशुद्धानन्द—(दयानन्दजीके सामने बैठकर) व्याख्यान भी प्रमाण हैं ?

दयानन्द—सनातन व्याख्यान भी प्रमाण हैं ।

विशुद्धानन्द—(हँसते हुए बोले) श्लोक भी प्रमाण हैं ?

दयानन्द—वेदसे अविरूद्ध यदि श्लोक हैं तो वे भी प्रमाण हैं, और महाभारतादिकोंमें भी वेद, व्याकरण, शिष्टाचार विरुद्ध वस्तु प्रमाण नहीं है, अर्थात् किसीके भी वचन प्रमाण नहीं हैं । (समीक्षक) स्वामीजीका यह तात्पर्य है कि यदि महाभारतमें पुराण अथवा प्रतिमा या श्राद्धादिके विषयमें कुछ प्रमाण दोगे तो हमें यह कहनेको अवसर है कि यह प्रमाण नहीं है । आश्चर्यकी बात है कि जो महाभारतके बनानेवाले कृष्ण द्वैपायन व्यास हैं वही पुराणोंके बनानेवाले हैं । महाभारत प्रमाण है और पुराण प्रमाण माननेमें सन्देह है । अस्तु, प्रकृतको देखिये ! क्षणमात्रमें स्वामीजीका सन्देह दूर हुआ जाता है ।

माधवाचारी—(जोरसे बोले), सुनिये ! पुराण प्रमाण माननेमें वेदकी सम्मति है । देखो तैत्तिरीय शाखामें लिखा है कि जब स्वर्गके मार्गसे इष्टापूर्तमें अर्थात् वापी, कूप, तडागादिकोंकी प्रतिष्ठामें आता है

तडागादीनां पूर्तत्वंपाराशरस्मृतिसम्मतम् । एवं च वाप्यादीनामुत्सर्गविधिः क्व वर्तते, वेदे पुराणे वा ?

दयानन्दः—(नीचैः) पूर्तशब्दार्थे एव विरोधः अतो निरुक्तमानय ।

तब उसके लिये हवन करै। यहाँ पर वेदमें पूर्त शब्द है और वापी कूप, तड़ागादिकोंकी प्रतिष्ठा पद्धतिको पूर्त कहते हैं। यह पाराशर स्मृतिमें लिखा है तो कहिये ! वापी, कूपादिकोंकी प्रतिष्ठा पद्धति कहाँ है, वेदमें या पुराणमें ?

दयानन्द—(धीरेसे) पूर्त शब्दके अर्थ ही में विरोध है, इससे निरुक्तकी पुस्तक लाइये ।

(समीक्षक) स्वामीजी विरोधी अर्थ देखा तो सकते ही नहीं क्योंकि जब कुछ कण्ठ (याद) हो तब विरोधी अर्थ देखावैं।

पुस्तकस्था तु या विद्या परहस्तगतं धनम् ।
आपत्काले समापन्ने न सा विद्या न तद्धनम् ॥

(पुस्तकमें रही हुई विद्या समय पर कुछ भी काम नहीं देती।) इसीसे स्वामीजी (दयानन्दजी) को वार-वार नीचा देखना पड़ता है। सच पूछो तो पुस्तक रहते हुए भी स्वामीजी क्या कर सकेंगे। शब्दका अर्थ तो बदल नहीं सकते। लेकिन सामाजिकोंके तरफसे जो कपोल कल्पित काशीका शास्त्रार्थ छपा है उसमें तो साफ लिखा है कि वापी-कूप-तड़ागादिको पूर्त कहते हैं, यह स्वामीजीने मान लिया था परन्तु वापी, कूप तड़ागादिकोंकी प्रतिष्ठा-पद्धतिका विधान पुराणोंमें ही है इस उद्देश्यसे वचन दिया गया था उसको मूर्तिके प्रमाणके लिये कहा गया था यह लिख मारा जिसका कुछ भी प्रकरण न था। ऐसी धूर्तताओंसे सचाईको छिपाना और सामाजिकोंको भ्रान्त करना इससे बढ़कर और क्या पाप हो सकता है ! अवश्य ही

माधवाचारी—(समदृष्टया ऊर्ध्वदृष्टया च समन्तादवलोक्य) यह बात पाँच वर्षका लड़का भी समझता है कि श्रुतियोंमें पूर्तका विधान है । वापी कूपोंका प्रतिष्ठापन पूर्त कहलाता है । अब वापी कूपों की प्रतिष्ठापद्धति कहाँ है, वेदमें या पुराणोंमें ? पुराण नहीं मानते तो यह पूर्त कर्म कैसे सिद्ध किया जायगा ? (पुस्तकमवलम्ब्य पठति) "अजाह्वै ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पयन् गाथा नाराशंसीमेवाहुः" इत्यादि ।

दयानन्दः—(शृण्वन्नेव) अत्र पुराणानीति ब्राह्मणविशेषणम् ।

कपोलकल्पित काशीशास्त्रार्थ जो कि समाजके तरफसे छपा है उसे देखते ही लोग समझ जाते होंगे कि यह कैसा असंबद्ध गढ़न्त है, प्रकाशकने अपनी तरफसे मनमाना भद्दा संस्कृत लिखकर यह अमुक विद्वानने कहा यह अमुकने और स्वामी दयानन्दजीके बोलते ही सब चुप हो गये । इस असत्यताको सिद्ध करनेके लिये बड़ा ही प्रयत्न किया । परन्तु पूर्वापर प्रकरणसे वह असत्यता स्पष्ट ही मालूम हो जाती है । अस्तु, प्रकरणको देखिये । पुस्तक निरुक्तकी वहाँ नहीं थी जिसे स्वामी दयानन्दजी चाहते थे इससे माधवाचारीजीने निर्विवाद दूसरा प्रमाण दिया ।

माधवाचारी—साक्षात् भी पुराण शब्द वेदमें है, (पुस्तक लेकर पढ़ने लगे) "अजाह्वै ब्राह्मणानि" इत्यादि, परमेश्वरसे ब्राह्मण अर्थात् ब्राह्मण भाग, वेद, इतिहास पुराण, कल्प, श्लोक, व्याख्यान इत्यादि उत्पन्न (प्रकट) हुए ।

दयानन्द—(सुनते ही) यहाँ पर पुराण यह ब्राह्मणका विशेषण है । अर्थात् प्राचीन ब्राह्मण भाग प्रमाण है ।

विशुद्धानन्दः—(पुस्तकं दापयित्वा स्वयं च तत्र दत्तदृष्टिः) कथं दूरेऽन्वयः ?

दयानन्दः— पुस्तकं परित्यज्य) "अजोनित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे" अत्र यथा तथैव ।

विशुद्धानन्दः—(स्थिरभावेन) तत्र न व्यवधानम् । सर्वेषामेव विशेषणत्वात् ।

बालशास्त्री—(स्मारयन्निव) विशेषणस्य फलं वक्तव्यम् ।

विशुद्धानन्द—(पुस्तक देकर स्वयं भी पुस्तकको देखते हुए बोले) इतिहासके व्यवधान रहते ब्राह्मणका विशेषण पुराण कैसे हो सकता है, अर्थात् पद्यके बिना साधारण संस्कृतमें व्यवधानसे विशेषण नहीं कहा जाता है। दूसरे, जब और दूसरा (इतिहास) विशेष्य उसके व्यवधानमें है तब व्यवहितका विशेषण होना असंभव है। इससे सिद्ध हुआ कि पुराण विशेष्य है विशेषण नहीं है, जैसे इतिहास प्रमाण है उसी तरह पुराण भी प्रमाण है।

दयानन्द—(पुस्तकको अलग फेंककर) जैसे "अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते० यहाँ पर व्यवधान रहते भी विशेषण होता है उसी तरह यहाँ भी हो जायगा।

विशुद्धानन्द—(समझाकर स्थिरता से बोले) "अजो नित्यः" यहाँ व्यवधान नहीं है क्योंकि सब विशेषण ही हैं। (समीक्षक) विजातीय विशेष्यका व्यवधान रहते विशेषण नहीं होता। इससे सर्व विशेषणके व्यवधानका प्रमाण देते हैं। धन्य है दयानन्दजीको और उनकी बुद्धिको जिन्हें यह भी पता नहीं लगता कि किस अनुपपत्तिके उत्तरमें क्या हम कहते हैं।

बालशास्त्री—विशेषण देनेका फल क्या है ?

दयानन्दः—पुराणविशेषणेन नवीनानां व्यावृत्तिः फलम् ।

विशुद्धानन्दः—इतिहासस्यापि विशेषणं देयम् ।

दयानन्दः—दत्तमेव छान्दोग्यादौ (सस्वरं पठति) विज्ञानं वाव-ध्यानात् भूयो विज्ञानेन वा ऋग्वेदं विजानाति यजुर्वेदं साम-वेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणः ।

सभ्याः—(सशिरः कम्पनम्) नैवं नैवं पाठः । इतिहासः पुराण-मित्येव पाठः । तथा च नात्र पुराणस्य विशेषणत्वं सम्भवति ।

दयानन्दः—(गर्जन्) इतिहासपुराणः इत्येवमेवपाठः इति नो चेत् मत्पराजयः अन्यथा युष्माकं पराजय इति लिख्यताम् ।

दयानन्द—नवीन ब्राह्मण भागकी व्यावृत्ति । (समीक्षक) क्या नवीन भी ब्राह्मण भाग है ?

विशुद्धानन्द—इतिहासका भी विशेषण देना चाहिये ।

दयानन्द—उपनिषदोंमें इतिहासका भी विशेषण दिया है यह कहकर "विज्ञानं" यह पढ़कर "आथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणः" यह पढ़ा, अर्थात् यहाँ पर पुराण यह इतिहासका विशेषण है ।

सभासद—नहीं नहीं, "इतिहासः पुराणम्" यह पाठ है और इतिहासः पुराणम् इस पाठमें विशेषण नहीं हो सकता क्योंकि इतिहासः यह पुलिंग है और पुराणम् यह नपुंसक लिंग है । यदि विशेषण होता तो पुराण यहाँ भी पुलिंग होता ।

दयानन्द—(गर्जकर जोरसे) "इतिहास पुराणः" यही पाठ है अर्थात् इतिहासः पुराणम् यह पाठ नहीं है । यदि इतिहासः पुराणम् यह पाठ निकल आवे तो हमारा पराजय, और यदि यह पाठ न निकलै तो तुम लोगोंका पराजय ऐसा लिखो। (समीक्षक) ठीक है, यदि "इतिहासः

पुराणम्" ऐसा पाठ हो तो विशेषण नहीं, तो फिर पुराणोंका प्रमाण निर्विवाद सिद्ध है और पुराणोंके प्रमाण होते ही श्राद्ध, प्रतिमा पूजन, अवतार सब सिद्ध हैं। अस्तु, अब "इतिहासः पुराणम्" इस पाठ ही पर सारा दार मदार है, लीजिये, इस पाठको देखिये—बृहदारण्यक उपनिषद्में प्रसंग भेदसे कई जगह लिखा है। जिस बृहदारण्यक उपनिषद्को दयानन्दजीने दश उपनिषदोंको प्रमाण मानते हुए प्रमाण माना है और जिस पाठके लिए स्वामीजी अपना पराजय लिखकर माननेको तैयार थे वहीं यह "इतिहासः पुराणम्" पाठ अपने घर पर पुस्तकें खोलकर देख लीजिये और आग्रह छोड़ कर पुराण प्रमाण मानकर सच्चे सनातन धर्मको स्वीकार कीजिये। निष्पक्षपातसे खूब सोचिये कि क्या किसी तरह भी पुराणम् यह विशेषण बन सकता है? जब विशेषण नहीं बन सकता तब मानिये कि निःसन्देह स्वामी दयानन्दजीका पराजय हुआ। सामाजिकोंने कपोल कल्पित जो काशी शास्त्रार्थ छपाया है उसमें यह पाठ न दिखा कर कह दिया कि इतिहासः पुराणम् यह उपनिषदोंमें पाठ ही नहीं है। अब देखिये बृहदारण्यकके चतुर्थ अध्यायके प्रथम ब्राह्मणमें (बृ० ४ अ०) निर्णयसागर छापेके अट्ठावीस उपनिषदोंके संग्रह वाले गुटकाके (१६९ पत्रमें) जनक और याज्ञवल्क्यके संवादमें आया है "का प्रज्ञता याज्ञवल्क्य! वागेव सम्राडिति होवाच, वाचा वै सम्राड्बन्धुः प्रज्ञायत ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरस इतिहासःपुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि" इत्यादि। अब कहिये यहाँ इतिहासः यह पुलिंग है, पुराणं यह नपुंसक लिंग है और विद्या यह स्त्रीलिंग है। यदि पुराण किसीका विशेषण होता तो नपुंसक लिंग नहीं हो सकता क्योंकि पुराण यह जहल्लिंग शब्द है, अर्थात् यदि इतिहासका विशेषण होता तो पुलिंग होता और यदि विद्याका विशेषण होता तो स्त्रीलिंग होता।

इससे पुराण यह विशेष्य ही है तो अब कहिये ! "इतिहासः पुराणम्" यह पाठ आपके आँखोंके सामने है और अब भी क्या पुराणोंके प्रमाण माननेमें अथवा स्वामी दयानन्दजीके पराजयमें कुछ सन्देह है ? अस्तु, दूसरी जगह उसी उपनिषद्में देखिये—

बृहदारण्यक, ४ अ०, ५ ब्रा० ११ मं० (पत्र २१७) "स यथार्द्रेधाग्नेरभ्याहितस्य पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो युजुर्वेदःसामवेदोऽथर्वांगिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राणि अनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि इत्यादि। अब "इतिहासः पुराणम्" यह पाठ है कि नहीं ? और भी देखिये (बृ० २ अध्याय ४ ब्रा० १० म० पत्र १७४) स यथार्द्रेधाग्नेरभ्याहितात्पृग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वाअरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः इत्यादि। कहिये सामाजिकों ! आग्रह छोड़ कर देख लो इतिहासः पुराणम् है कि नहीं ? "तीजे बात पतीजे" तीनों जगह इतिहासः पुराणम् यह पाठ है। इससे अब निःसन्देह पुराण प्रमाण है। स्वामी दयानन्दजीने जो कहा था कि "इतिहासः पुराणम्" यह पाठ हो तो हमारा पराजय नहीं तो तुम लोगोंका, यह जो लिखनेको तैयार थे और यह पाठ तीन जगह मौजूद है तो अब मानना चाहिये कि स्वामी दयानन्दजीने अपना पराजय लिखकर स्वीकार किया। अस्तु, अब "इतिहासः पुराणम्" अथवा "इतिहास पुराणः" इस पाठको मान भी लें तब भी "पुराणम" यह विशेषण नहीं बन सकता क्योंकि यदि पुराण यह विशेषण होता तो पुराणका पूर्वनिपात होता। देखो-विशेषण होने पर पुराण शब्दके पूर्वनिपातके लिये महर्षि पाणिनिजीका वचन है "पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन" (२ अ० २ पाद सूत्र)। इस सूत्रकी उपपत्ति करते हुए भट्टोजिदीक्षितने भी

ताराचरण:—(सहासमुच्चैः) एतावत्कालमपि त्वत्पराजयोऽवशिष्टः किम् ?

दयानन्दः—(अग्राह्यभावने) नहि युष्माभिः पराजितोऽहम्, जयाजये युष्माकमेव स्वकीयेच्छा ।

लिखा है कि "विशेष्यं-विशेषणेनेति सिद्धे नियमार्थे सूत्रम्" अर्थात् पुराण शब्द जब किसीका विशेषण होगा तब निश्चयसे पुराण शब्दका पूर्व प्रयोग ही होगा और जब पुराण शब्दका पूर्वमें प्रयोग नहीं है तब विशेषण भी नहीं हो सकता है जैसे पुराण-मीमांसकाः, पुराण पुरुषः इत्यादिमें पुराण शब्दका पूर्व प्रयोग है इससे विशेषण हो सकता है, और प्रकृत (इस वेद) में "इतिहासः पुराणम" ऐसा पाठ है अर्थात् पुराण शब्दका पूर्व प्रयोग नहीं है इससे विशेषण नहीं हो सकता; तो यहाँ पुराण विशेष्य ही है, तो यहाँ यह अर्थ होता है कि "इतिहासके सहित पुराण" अर्थात् इतिहास भी प्रमाण है और पुराण भी प्रमाण है। महाशयों ! थोड़ा सा परिश्रम करके बृहदारण्यक उपनिषद्के पाठोंको देखो और स्वामीजीके आग्रहके लिये पाणिनीय व्याकरण (ग्रामर) को देखो। निष्पक्षपात विचार करके सत्य सनातन धर्मको स्वीकार करो। अस्तु, स्वामी दयानन्दजी के इस वाक्यको सुनकर "इति नोचेत् मत्पराजयः अन्यथा युष्माकं पराजयः" अर्थात् यदि ऐसा पाठ न हो तो हम हारे और ऐसा (इतिहासः पुराणम्) पाठ न हो तो तुम हारे" पं. ताराचरणजी बोले।

ताराचरण—(हँसकर) क्या अब भी तुमारे पराजय होनेमें कुछ कसर है ? अर्थात् इतने वार निरुत्तर हुए फिर भी पराजय अवशिष्ट ही रहा ?

दयानन्द—हम तो हारे नहीं, तुम लोग अपनी इच्छासे जीतो या हारो।

ताराचरणः—अद्यापि विचारयितुं प्रवृत्तश्चेत्कथय।

दयानन्दः—(उपहसति) कोथोय, कोथोय, हा हा हाः।

ताराचरणः—(सकोपम्) किमेवं मुखव्रीडनं कुरुषे, त्वत्सदृशा मे वहवश्छात्राः सन्ति।

दयानन्दः—(प्रहस्य) वद ! वद ! यथा वहवो मूर्खाः प्रत्यहमागत्यागत्य मां विविधकटून् वदन्तो गच्छन्ति तथा त्वमपि वद।

सभ्याः—(विमर्शाः) किमनेन लौकिकेन ? क्षणमात्रेणैव समस्त कोलाहलो निवर्त्स्यति तत्प्रकृतमनुसर।

माधवाचारी—(अत्युच्चैः सवागाडम्वरम्) शुक्लयजुर्वेदीयशतपथब्राह्मणे अश्वमेधप्रकरणे अष्टमेऽहनि इतिहासपाठः, नवमेऽहनि

ताराचरण—अब भी (कुछ आपके पराजय होनेमें कसर है) विचार करना चाहते हो तो कहो।

दयानन्द—(मसखरी करके) कोथोय कोथोय इस तरहसे बंगाली बोलीकी मसखरी करके जोरसे हँसा।

ताराचरण—(क्रोधसे) क्या इस तरह मुँख वनाते हो, मसखरी करते हो ! तुमारे ऐसे हमारे बहुतसे विद्यार्थी हैं।

दयनन्द (हँसकर) कहो ! कहो ! जैसे रोज रोज हमारे पास वहुतसे मूर्ख आकर कटुवाद कहते हैं उसी तरह तुम भी कहो।

सभासदगण—इस लौकिक कोलाहलसे क्या प्रयोजन है, प्रकृतके तरफ ध्यान दो। अभी सब कोलाहल निवृत्त होता है।

माधवाचारी—(वड़े जोरसे वोले) शुक्ल यजुर्वेदके अश्वमेध प्रकरण में आठवें रोज इतिहासका पाठ और नवमे रोज पुराणका पाठ सुननेको लिखा है, यदि पुराण प्रमाण नहीं हैं तो पुराणोंका पाठ

पुराणपाठः श्रूयते, पुराणानामप्रामाण्ये तत्र तत्पाठः कथं वेदविहितः ?

दयानन्दः—तत्रान्यथैव व्याख्येयम्, पुस्तकमानय ।

माधवाचारी—गृहाण, "एवं पाठः" अथाष्टमेऽहन् एवमेवैतास्विष्टिषुसंस्थितास्वेपैवावृदध्वर्यविति हवै होतरित्येवोध्वर्युर्मत्स्यः सामदो राजेत्याह, तस्योदके चराविशस्त इम आसत इति मत्स्याश्च मत्स्यहनश्चोपसमेता भवन्ति तानुपदिशतीतिहासो वेदः सोऽयमिति किंचिदितिहासमाचक्षीतैवमेवाध्वर्युः संप्रेष्यति न प्रक्रमां जुहोति । अथ नवमेऽहन् एवमेवैतास्विष्टिषु संस्थितास्वेपैवावृदध्वर्यविति हवै होतरित्येवाध्वर्युस्तार्क्ष्यो वै पश्यतो

सुननेके लिये वेद क्यों आज्ञा देता है। इससे सिद्ध हुआ कि पुराण प्रमाण हैं।

दयानन्द—उसका अर्थ दूसरा होगा पुस्तक लाओ।

माधवाचारी—लीजिये यह कहकर पुस्तक दे दी। वहाँका पाठ ऊपर लिखा है। जिसका यह अर्थ है, कि अश्वमेध यज्ञमें आठवें रोज इष्टि इत्यादिके यथास्थित रहते अध्वर्यु होता इत्यादिको उपदेश देता है कि इतिहास वेद है अर्थात् वेदके सदृश इतिहास भी प्रमाण है। अनन्तर इतिहासको सुनाता है, और (उस रोज) हवन नहीं करता है। एवम् नवमे रोज इष्टि इत्यादिके यथास्थित रहते अध्वर्यु होता इत्यादिको उपदेश देता है कि पुराण वेद है इसलिये वह पुराणोंको सुनाता है और हवन (प्रसंग प्राप्त आहुति) नहीं करता

राजेत्याह तस्य वयांसि च वयो विधिश्चोपसमेता भवन्ति तानु-पदिशति पुराणं वेदः सोऽयमिति किंचित् पुराणमाचक्षीतैवमेवा-ध्वर्युः संप्रेष्यति न प्रक्रमां जुहोति।

दयानन्दः—(तत्पत्रं गृहीत्वा बहुकालमावर्ज्य प्रत्यावर्ज्य च दृष्ट्वा स्वगतं पश्यन्निव तुष्णीं स्थितः)।

विशुद्धानन्दः—हर हर महादेव! ब्रुवन् उत्थितः। सभाभङ्गः। करतालिध्वनिश्च।

है। (समीक्षक) समाजिकों! अब तो पुराण प्रमाण सिद्ध हुआ और पुराण सिद्ध होनेसे अवतार, प्रतिमापूजा इत्यादि सब प्रमाण हैं यह निर्विवाद सिद्ध हो गया।

दयानन्द—उस (जिसमें उक्त पाठ था और जो पत्र माधवाचारीजीने दिया था) पत्रको बहुत देर तक लौटा पौटा कर देखकर मनसे पराजयको मानकर चुप हो गये। (समीक्षक) पत्रके उलटनेसे अर्थ तो उलटता ही नहीं, यदि वर्षों तक स्वामीजी पत्र उलटा करें तो भी दूसरा अर्थ नहीं हो सकता है। समीक्षकों! निराग्रही सामाजिकों! यदि थोड़ा भी संस्कृतका परिज्ञान है तो देख लो और पुराणोंको प्रमाण मानकर सत्य सनातनधर्मके मन्तव्योंको मानकर अपना उद्धार करो।

विशुद्धानन्द—जब दयानन्दजी सर्वथा चुप हो गये और "मौनं स्वीकार लक्षणम्" मौन हो जानेसे पुराणोंको प्रमाण इन्होंने स्वीकार कर लिया यह सब लोगोंको मालूम हो गया जिससे प्रतिमापूजा, अवतार, श्राद्ध इत्यादि सब प्रमाण सिद्ध हुए। तब विशुद्धानन्दजी

इति श्रीकान्यकुब्ज भूदेवेन साहित्योपाध्यायपदवीं लब्धवता प्राप्तव्याकरणप्रतिष्ठापत्रकेण विद्यावारिधिरितिपदवी-विभूषितेन पण्डितवर मथुराप्रसाददीक्षितेन विरचितः काशी-शास्त्रार्थः समाप्तः ।

हर ! हर ! महादेव ! यह कहकर खड़े हो गये, सभा विसर्जित हुई और काशीस्थ विद्वानोंका जय और दयानन्दजीका पराजय हुआ । इससे सब लोगोंने ताली बजाई ।

इति शुभम्

पुस्तकों की सूचना ।

(सन् १९१६ में प्रकाशित)

समासचिन्तामणि सहित कवितारहस्य ।

जिसको विद्यावारिधि साहित्योपाध्याय पण्डितवर
मथुरा प्रसाद दीक्षितजी ने, बनाया है एकबार
पढ़ जाने से समास करना तथा
कविता बनाना आ जाता है ।

कीमत ।) और

नारायणबलिनिर्णय ।

जिसको पञ्जाब राजकुमारों के धर्मशिक्षक साहित्यो-
पाध्याय विद्यावारिधि पण्डितवर मथुराप्रसाद
दीक्षित जी ने किसके २ लिये नारायण-
बलि होना चाहिये यह निर्णय करके
प्रकाशित किया है ।

कीमत =)

पुस्तक मिलने का पता—

पं० मथुराप्रसाद दीक्षित
चीफ़्कालेज लाहौर ।

अथवा

लखनऊ स्टीम प्रिंटिंग प्रेस बुक्डिपो
कचौरी गली, बनारस सिटी ।

सहायक महानुभाव

"स्वामी दयानन्दजीका सच्चा काशी शास्त्रार्थ" नामक पुस्तकके द्वितीय संस्करणके प्रकाशनमें काशीके निम्नांकित महानुभावोंने आर्थिक सहायता प्रदान की। सम्पादक उन सबका कृतज्ञ है।

सहायता प्रदान करने वालोंमें स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज (गोविन्द मठ), विद्वन्मूर्धन्य पं० दौलतराम गौड़जी वैदिक (अध्यापक संन्यासी संस्कृत महाविद्यालय) सेठ श्री सीतारामजी खेमका तथा उनके सुपुत्र एवं मेरे मित्र श्री राधेश्यामजी खेमका विशेष धन्यवादके पात्र हैं।

दाता	परिचय
श्री १०८ स्वामी बालकृष्ण यतिजी महाराज मण्डलेश्वर	हथियाराम मठ
ब्रह्मचारी ज्योतिर्मयानन्दजी महाराज	दक्षिणामूर्ति मठ
श्रीमान् स्वामी श्यामानन्दजी ,,	मङ्गलमठ (गरीबदासी)
,, ,, मस्तराम ,, ,,	साधुबेला संस्कृत म. विद्या.
,, ,, विष्णुपुरी ,, ,,	परमार्थ साधक संघ
,, ,, दिव्यानन्द ,, ,,	संन्यासी संस्कृत महावि०

श्रीमान् स्वामी कृष्णानन्दजी वेदान्ती	गोविन्द मठ
„ „ रमेशपुरी „ महाराज	विहारीपुरी मठ
„ महन्त त्रिवेणी भारतीजी „	निर्वाणी अखाड़ा
„ गोस्वामी त्रिभुवनपुरी „ „	अन्नपूर्णा मठ एवं मंदिर
„ बाबा रतननारायण गिरि „	निर्वाणी अखाड़ा
„ ब्रह्मचारी शङ्करानन्दजी „	शाङ्करवेदान्त पीठ
„ „ नारायण चैतन्य „	संन्यासी संस्कृत महावि०
„ स्वामी योगेन्द्रानन्द जी „	गोविन्द मठ
„ „ धर्मानन्द „ „	संन्यासी संस्कृत महावि०
„ „ रामानन्द „ „	काशीदेवी मठ
„ „ रूद्र चैतन्य पुरी „	गोविन्द मठ
„ „ सदानन्दगिरि„ „	संन्यासी संस्कृत महावि०
„ ब्रह्मचारी सदानन्द „ „	मधुसूदन मठ
„ स्वामी ब्रह्मानन्द „ „	केशवानन्द शिवाला
„ „ रामसुखदास „ „	रामस्नेही (गरीबदासी) काशीदेवी मठ
„ „ कृष्णानन्द „ „	(दशनामी कोतवाल)फूटागणेश
„ „ शान्तानन्दयति„ „	संन्यासी संस्कृत महा वि०
„ ब्रह्मचारी निर्गुणचैतन्य„ „	„ „
„ स्वामी ओंकाराश्रम „ „	दण्डी स्वामी, अनंतविज्ञानमठ
„ कमलेशकुमार चतुर्वेदी जी	गोदौलिया
„ पं० अनन्तशास्त्री फडके जी	कपिलेश्वर गली
„ पं० रामयत्न शुक्ल जी	संन्यासी संस्कृत महा वि०

श्रीमान् पं० वासुदेव द्विवेदी जी सार्वभौम	हौजकटोरा
,, श्यामानन्द मिश्रजी वकील	बाँसफाटक
,, पं० प्राणलाल आचार्य जी	गुर्जरछात्र स० समिति
,, ,, विश्वम्भर शास्त्री गौड़	प्र० मन्त्री, अ०भा०सं० छात्रसंघ
,, ,, केदारदत्त जोशी जी	ज्योतिषी, नगवा
,, ,, गोविन्दजी पाण्डेय	ज्योतिषी, संन्यासी सं० म० वि०
,, ,, सुदामामणिजी त्रिपाठी	संन्यासी संस्कृत महा वि०
,, ,, लालविहारी मिश्रजी	गोयनका सं० म० वि०
,, ,, रामावलम्ब शास्त्री जी	संन्यासी सं० म० विद्या०
,, ,, भवनाथ मिश्रजी	,, ,, ,,
,, ,, अरुणकुमारजी जैन	ढुण्ढिराज गणेश
,, ,, कैलासनाथ शर्मा	संन्यासी संस्कृत म० विद्या०
,, युत राधेलालजी चतुर्वेदी	गोदौलिया
,, ,, बाबूलालशर्मा काँकर	मीरघाट

स्वामी केशवपुरी

सम्पादक

सद्भाव वर्धिनी सभाकी पुस्तकें

रटाटे स्मृति ग्रन्थ

सम्पादक—पं० अनन्त शास्त्री फडके

वेदमूर्ति पण्डित रामचन्द्रशास्त्री रटाटे स्मृतिग्रन्थ दिल्ली प्रदेशके उपराज्यपाल डाक्टर आदित्यनाथ झा महोदयको समर्पित हुआ है। हिन्दी एवं संस्कृतमें अनेक मूर्धन्य विद्वानोंके लेख। काशीके वैदिकों एवं याज्ञिकोंका संक्षिप्त परिचय। अठपेजी पृष्ठ १८०। मूल्य ८) रु०।

पुराणदर्शन चित्रम्

आलेखक—पं० विनायक रामचन्द्र रटाटे

विषय—संसारवृत्त, उद्वैत तत्त्व विमर्श, पुराणतत्त्व प्रदर्शन, भूगोल, खगोल तथा अवतारोंका चित्रण। मूल्य—एक रुपया प्रति चित्र।

पुराण दर्शन चित्र परिचय

लेखक—पं० विनायक रा० रटाटे

इसमें उपर्युक्त चित्रके विषयोंका वर्णन है। ये दोनों नेपाल नरेशको समर्पित किये गये हैं। स्वर्गीय महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, स्व० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पं० गोपाल शास्त्री दर्शनकेसरी आदि द्वारा प्रशंसित। मूल्य—रु० २.५० पैसे।

पता—के. २२।४८, दुर्गाघाट, वाराणसी। (उ० प्र०)

सम्पादक की कृतियाँ

आत्मकथा और संस्मरण (सम्पादित)

वैदिक धर्म एवं संस्कृतिके सन्देशवाहक स्वर्गीय महामहोपाध्याय पण्डित श्रीगिरिधर शर्मा चतुर्वेदीजी द्वारा लिखित अपनी जीवनी तथा संस्मरण। भारतीय संस्कृतिकी प्रतिनिधि पुस्तक। अनेक चित्र, लगभग ४०० पृष्ठ, डबल डिमाइ, मूल्य—५) रुपये।

कच्छ

(इतिहास और संस्कृति) अप्रकाशित

सन ६५ के पाकिस्तानी आक्रमणके समय लेखकके सुझावों पर योजनाएँ बनीं। सृष्टिके आरम्भसे सन् ६५ तकका इतिहास, संस्कृति, साहित्य, कथाएँ तीर्थ, कलाकौशल, पाकिस्तानी आक्रमण आदि पर एकमात्र खोजपूर्ण पुस्तक। लगभग ८० चित्र तथा मानचित्रोंसे युक्त। अठपेजी पृष्ठ ४०० लगभग।

काशीके मठोंका इतिहास

(निर्माणाधीन)

काशीके समस्त सम्प्रदायोंके लगभग २५० साधु स्थानोंका सर्वाङ्गपूर्ण संक्षि इतिहास।